UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

SELF LEARNING MATERIAL

B.A/B.Sc

COMMON COURSE IN HINDI

THIRD SEMESTER

POETRY IN HINDI

HIN3 A09

(2019 Admission onwards)

19109

UNIVERSITY OF CALICUT
SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

SELF LEARNING MATERIAL

B.A/B.Sc
COMMON COURSE IN HINDI
THIRD SEMESTER
POETRY IN HINDI

HIN3 A09
(2019 Admission onwards)

Prepared by :

DR. PRASEEJA N. M.
Assistant Professor in Hindi
School of Distance Education
University of Calicut

Scrutinized by:

DR. MAYA P.
Assistant Professor
Dept.of Hindi, N.S.S College
Ottapalam.

CONTENTS

Module –I

- कबीरदास
- सूरदास
- तुलसीदास

Module –II

- सखि वे मुझसे कहकर जाते-मैथिलीशरण गुप्त
- जागो फिर एक बार- निराला
- हम भी साझीदार थे- नागार्जुन
- मैंने कहा पेड़- अज्ञेय

Module –III

- पुतली में संसार- अरुण कमल
- बीज व्यथा- ज्ञानेंद्रपति
- बेजगह- अनामिका
- मेरे अधिकार कहाँ है- जयप्रकाश कर्दम

ModuleIV

कनुप्रिया- धर्मवीर भारती

Module 1

कबीर-दोहे

निर्गुण ज्ञानाश्रयी भक्तिधारा अथवा संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि संत कबीरदास के जन्म, जीवन और मृत्यु के बारे में अनेक मत एवं किंवदन्तियाँ जन साधारण में प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म संवत् 1455 (सन् 1398) के ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से वाराणसी (काशी। बनारस) में हुआ। माता ने लोकलाज के कारण उन्हें लहरतारा तालाब के पास छोड़ दिया। एक नि:सन्तान मुस्लिम जुलाहा दम्पती नीरू और नीमा ने संयोग के वशीभूत होकर उनका पालन पोषण किया। संत कबीर में बाल्यावस्था से ही वैराग्य के लक्षण विद्यमान थे। उन्हें अध्यात्म में रुचि उत्पन्न हो गई। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के कारण शिक्षा तो प्राप्त नहीं हो पाई। अर्थात् वे पढ़े-लिखे तो नहीं थे, पर बहुश्रुत अवश्य थे। उन्होंने वाराणसी में अनेक विद्वानों के कीर्तन-प्रवचन सुने। उन्होंने उस समय के सर्वाधिक

लोकप्रिय वैष्णव आचार्य स्वामी रामानन्द को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया। कबीर का विवाह लोई (रमजनिया) नामक स्त्री से हुआ। उनके कमाल और कमाली नामक दो सन्तानें हुईं। अपने जीवन काल में संत कबीर ने अनेक बार यात्राएँ की। इससे उनके अनुभव में पर्याप्त वृद्धि हो गई। संत कबीर स्वभाव से ही सदाचारी, सज्जन, सत्यवादी और अक्खड़ थे। संवत् 1575 (सन् 1518) में संत कबीर का निधन वाराणसी के पास स्थित एक गाँव मगहर में हुआ।

संत कबीर के अनेक शिष्य थे, जिनमें से धर्मदास नामक शिष्य ने उनकी वाणी का संकलन 'कबीर बीजक' शीर्षक से किया। कबीर की वाणी तीन रूपों में प्रकट हुई- साखी।साक्षी (दोहे), सबद। शब्द (पद) और रमैणी।रामायणी (चौपाइयाँ)। संत कबीर के व्यक्तित्व में कवि, भक्त, योगी और समाज सुधारक आदि विविध आयाम प्राप्त होते हैं। रमैणी में उनका भक्त रूप, सबद में योगी रूप और साखी में समाज सुधारक रूप प्रकट होता है। निर्गुणवादी ज्ञानाश्रयी कवियों के प्रतिनिधि के रूप में कबीर का स्थान अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। संत होने के कारण उनके काव्य में उपदेश और समाज प्रबोधन की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। उन्हें जो-जो उचित अनुभूत हुआ उसकी

उन्होंने प्रशंसा की और जो सामाजिक रूढ़ियाँ उचित न लगीं, उन पर उन्होंने कठोर प्रहार भी किए। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थयात्रा, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, व्रत, हज, नमाज, जपमाला आदि अन्धविश्वासों का जमकर विरोध किया। ढोंगी चाहे साधु हो या मुल्ला किसी को भी नहीं बख्शा। उनका सारा जीवन हिन्दुओं और मुस्लिमों के पाखंड का खंडन कर उनमें बन्धुत्व तथा एकता को उत्पन्न करने में खर्च हुआ। उनकी मृत्यु भी काशी में मरनेवाले को स्वर्ग प्राप्ति होते हैं तथा मगहर में मरनेवाले को नर्क में रहना पड़ता, इस अन्धविश्वास को तोड़ने का काम करती है। इस दृष्टि से संत कबीर को क्रान्तिकारी क्रान्तद्रष्टा कवि कहा जा सकता है। कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी अथवा सधुक्कड़ी भाषा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर को वाणी का तानाशाह (डिक्टेटर) भी कहा है।

1.सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार।

लोचन अनन्त उघडिया, अनन्त दिखावणहार ।।

भावार्थ- कबीर कहते हैं कि सतगुरु की महिमा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। सतगुरु की महिमा की कोई सीमा नहीं है। गुरु ने हम पर असीम उपकार किया हुआ है।

उन्होंने हमें अज्ञान के अंधेरे से निकालकर ज्ञान का मार्ग दिखाया है। हमारे ज्ञान चक्षु खोल दिये हैं और हमें पर परमात्मा के दर्शन कराया हैं।

यहाँ गुरु की महिमा को दर्शया गया है।

2.सात समुंद की मसि करूँ, लेखनि सब बनराई।

सब धरती कागद करूँ, प्रभु गुण लिखा न जाइ।।

भावार्थ- यदि सातों समंदर की स्याही बना ली जाए और समस्त जंगलों की लकड़ी की लेखनी बना ली जाए और सम्पूर्ण धरती का कागज़ बना लिया जाए तो भी हरी के गुणों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। कबीर ने हमेशा से ही गुरु को ईश्वर के तुल्य माना है, जिसमे अथाह गुण हैं और जिसके गुणों का बखान नहीं किया जा सकता है। सातों समुद्रों के जल की स्याही बना ली जाए और सभी वन समूहों की लेखनी बना ली जाए, तथा सारी पृथ्वी को काग़ज़ कर लिया जाए, तब भी परमात्मा के गुण को लिखा नहीं जा सकता। क्योंकि वह परमात्मा अनंत गुणों से युक्त है जिसका वर्णन संभव नहीं है। ऐसे ही गुरु की महिमा का वर्णन है की गुरु और गोविन्द दोनों एक ही समान हैं, वस्तुतः गुरु ईश्वर से

भी बढकर है क्योंकि गोविन्द के विषय में गुरु देव जी ने ही बताया है।

3.जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।

पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप।।

भावार्थ-ईश्वर के स्वरुप के सन्दर्भ में कबीर की वाणी है की जिसके कोई मुंह नहीं है, कोई माथा नहीं है वह तो निर्गुण और निराकार है। उसे ना तो सुन्दर कहा जा सकता है और नाहिं कुरूप ही। वह फूलों की खुशबु की भाँती है जिसे ना तो छुआ जा सकता है और नाही देखा जा सकता है लेकिन उसके अस्तित्व को महसूस किया जा सकता है। उसके होने का, अस्तित्व का पता लगाया जा सकता है ऐसा है निर्गुण परम ब्रह्म। भाव यह है कि ईश्वर को हम मंदिर, देवालय और मूर्तियों में एक रूप में ढाल कर देखते हैं। यह सत्य नहीं है क्योंकि वह तो निराकार है, निराकार होकर भी साकार है, कण कण में व्याप्त है। जिसके अस्तित्व को समझा जा सकता है। कबीर ने जहाँ मूर्तिपूजा का विरोध किया वहीँ पर लोगो को धार्मिक कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास के प्रति भी जागृत किया और समझाया की ईश्वर किसी स्थान विशेष का मोहताज नहीं है, वह तो कण कण में, समस्त ब्रह्माण्ड में

व्याप्त है। उसे कहीं ढूँढने के लिए जाने की आवश्यकता नहीं है वह तो हमारे ही घट में है। वस्तुतः मानवता को अपनाकर और सद्मार्ग पर चलकर हम सत्य के प्रकाश में उसे महसूस कर सकते हैं। ईश्वर को महसूस करने की क्षमता भी तभी आएगी जब हम भक्ति के प्रति पूर्ण समर्पित होंगे, यदि डरपोक तैराक की भाँती ऊपर ऊपर ही घूम फिर कर आ गए तो कुछ भी हाथ नहीं लगने वाला है, इसके लिए अन्दर तक गोता लगाने की आवश्यकता है। कबीर ने निर्गुर्ण और निराकार पूर्ण ब्रह्म के विषय में सन्देश दिया है।

4.सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै।।

भावार्थ- इन पंक्तियों में कबीर ने समाज के ऊपर व्यंग्य किया है। वह कहते है कि सारा संसार किसी झाँसे में जी रहा है। लोग खाते हैं और सोते हैं, उन्हें किसी बात की चिंता नहीं है। वह सिर्फ खाने एवं सोने से ही खुश हो जाते हैं। जबकि सच्ची ख़ुशी तो तब प्राप्त होती है, जब आप प्रभु की आराधना में लीन हो जाते हो। परन्तु भक्ति का मार्ग इतना आसान नहीं है, इसी वजह से संत कबीर को जागना एवं रोना पड़ता है।

5.प्रेम ना बाड़ी ऊपजै, प्रेम ना हाट बिकाय।

राजा परजा जिहिं रुचै, सीस देइ लै जाय।।

भावार्थ-कबीर ने कभी भी पांडित्य प्रदर्शन नहीं किया और ना ही लोगों को शब्दों की जादूगिरी से प्रभावित करने की कोशिश की, गूढ़ रहस्यों को उन्होंने बड़े ही सरल शब्दों में लोगों के समक्ष रखने में उनकी प्रतिभा विलक्षण रही। 'प्रेम' को हम प्रयत्न करके,मेहनत करके पैदा नहीं कर सकते हैं और ना ही हम प्रेम को बाजार से मूल्य चूका कर खरीद सकते हैं। प्रेम राजा और प्रजा सभी के लिए समान है, इसकी कीमत है 'शीश देय' , अहम और स्वंय के होने का एहसास को समाप्त करना। जब तक 'मैं' है प्रेम नहीं है। यह कबीर के द्वारा दिया गया 'बीज' है जिसकी जितनी व्याख्या की जाय कम है। प्रेम सांसारिक और भौतिक वस्तु नहीं है जिसे हम उपजा ले, किसी से खरीद लें, उधार ले लें। यह तो एहसास की बात है।

सूरदास

(जन्म-1478ई०- मृत्यु- 1580ई०)

दिल्ली के पास सीही नामक गाँव में सूरदास का जन्म सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। 18 वर्ष की अवस्था में विरक्त होकर वे मथुरा के विश्राम घाट पर चले गये और कुछ समय बाद वहाँ से भी आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर जाकर रहने लगे जहाँ उनकी भेंट 1510 ई० के आसपास स्वामी वल्लभाचार्य से हुई जिन्होंने उन्हें घिघियाने से मनाकर के कृष्ण लीला के पद गाने को कहा। वल्लभाचार्य जी ने उन्हें गोकुल के श्रीनाथ मंदिर में कीर्तिनिया के रूप में रखा और आजीवन वहीँ रहे। स्वामी विट्ठलनाथ ने जिन आठ भक्तों को लेकर पुष्टिमार्ग की स्थापना की उस 'आठछाप' में सूरदास प्रमुख थे उन्हें विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग का जहाज कहा है। 'खंजन नैन रूप रसमाते' उनकी मृत्यु के पूर्व का अन्तिम पद है जो राधाभाव की तल्लीनता का प्रमाण है। सूरदास की कृतियाँ 'सूरसागर', साहित्य लहरी' और 'सूरसारावली' मानी जाती हैं। उनमें सर्वाधिक प्रमाणित 'सूरसागर' ही माना जाता है, जो कृष्णलीला से सम्बद्ध सहस्राधिक पदों के कारण सागर

कहलाया।

कृष्ण की बालसुलभ चेष्टाओं और लीलाओं तथा माता यशोदा के वात्सल्य के वर्णन की दृष्टि से सूरदास अन्यतम रचनाकार हैं। बालक और माता की मनोवृत्तियों और सहजात प्रक्रियाओं का ऐसा मनोहारी और चित्रात्मक वर्णन सूरदास को महाकवि बनाने के लिए काफी है। ग्वालबाल, माखन चोरी, गोचारण लीला, गोवर्धन कृष्ण लीला आदि अनेक लीलाओं के माध्यम से राधाकृष्ण और महाराज कृष्ण का जो वैविध्यपूर्ण विम्बात्मक वर्णन किया है उससे मानव स्वभाव के विविध पक्षों और नितान्त मानवीय सम्बन्धों के विकास की ऐसी समझ विकसित होती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। सौन्दर्य वर्णन और प्रेम की विविध मनोदशाओं के वर्णन की दृष्टि से अनके पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं भ्रमर गीत' से प्रकृति, मन और गोपियों के तादात्म्य के द्वारा सूर ने गोपियों की अनन्यता, प्रेम पात्रता और वियोग की अनेक स्थितियों का नितांत सहज और मानवीय चित्र प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले वे पहले महाकवि हैं।

भावार्थ-1. हे प्रभु, आज मैं तुम्हारे एक-एक बिरद की असारता सिद्ध करके रहूँगा। या तो तुम्हारी जीत होगी या मेरी ही। मैं अकेले अपने भरोसे युद्ध करूँगा। मैं तो सात पीढ़ी का पतित हूँ और पतित रहते हुए ही मेरा निस्तारण होगा, मेरा उद्धार होगा। अब मैं नंगा होकर नाचना चाहता हूँ। तुम्हारा कोई शील संकोच नहीं मांगा और अब तुम्हें बिरद-विहीन करके छोडूंगा। तुम्हारी सारी दीन-बन्धुता, करुणानिधानता, पतित पावनता निकालकर साँस लूँगा। हे प्रभु, तुम अपना विश्वास क्यों उठाए दे रहे हो? मैंने अब हरि रूपी हीरा पा लिया है। मैं तुम्हारे द्वार से तभी उठूँगा, जब तुम उठकर हँसकर मुझे पान का बीड़ा दोगे और कहोगे-सूर उठो, तुम जीते मैं हारा। जाओ तुम्हारा भी उद्धार मैंने कर दिया।

2. तुमने मनुष्य जनम पाकर किया क्या? श्री भगवान का नाम तो लिया नहीं, कुत्तों और सूअरों की भाँति केवल पेट भरते रहे। कानों से श्रीमद्भागवत की कथा नहीं सुनी, गुरु की कृपा प्राप्त कर गोविन्द को पहचाना नहीं, हृदय में (भगवान के प्रति) भावना एवं भक्ति कुछ भी उत्पन्न नहीं हुई, केवल विषय-चिन्तन में ही लगे रहे। प्रियतमा स्त्री के स्पर्श सुख में

ही डूबे रहकर उस मिथ्या सुख को (जो अनन्त दुख देनेवाला होने से सुख न होकर दुख ही है) अपना सुख (आत्म सुख) समझ लिया। इस प्रकार अरे अधम! तूने पाप को सुमेरु पर्वत के समान बढ़ा लिया और अन्त में निर्बल हो गया। चौरासी लाख योनियों में बार-बार घूमते हुए भी तू फिर उसी (विषय-चिन्तन) में लगा है। सूरदास जी कहते हैं-भगवान का भजन किए बिना आयु इस प्रकार नष्ट हो गई, जैसे अंजलि में लिया जल।

3. ग्वालिनी बोली-हे नन्दरानी, अब अपना गाँव लो। अब तो मैं इस गाँव को छोड़कर चल पड़ी। यहाँ मेरी जैसियों का अब गुजारा नहीं है। तुम खुद बड़े बाप की बेटी हो, बड़े नन्दराय की बहू हो और अपने पूत को भी बड़ी-बड़ी बातें पढ़ा रही हो। मैं तो छोटे बाप की बेटी हूँ, छोटे अहीर के घर व्याही गई है। मेरा गुजर यहाँ कैसे हो सकता है। मैं कहाँ से नई-नई मटकी और कमोरी लाऊँ। यह तुम्हारा लाडला अपने सखाओं की भारी भीड़ लिए घर में घुस जाता है अकेला खानेवाला हो, तो एक बात भी है। पर यह भारी भीड़? इसे कैसे संभाला जा सकता है। जब मैं इसे पकड़ने गई, तब के इसके गुण क्या कहूँ? यह मुझे देखते ही कहीं भागकर छिप

गया। मैं घर में आकर सो गई। यह चुपके- चुपके आया और इसने मेरी चोटी खाट के सीरो से बाँध दी।

इस पर किशन कन्हैया बोले- मैया, इनके गुन मुझसे सुन लो। इसने मुझे अपने पास बुलाया और कहा कि दही की कटोरी में चींटियाँ पड़ गई हैं, लल्ला इन्हें निकाल दो। मुझसे इसने सेंत-मेंत में सारी चीटियाँ निकलवाई। मैं चाकर की तरह इसकी टहल में लगा रहा और वह मौज से अपने पति को लेकर जा सोई।

कन्हैया की इस बात को सुनकर यशोदा हँस पड़ी और ग्वालिन ने अपना मुँह लाज से ढक लिया।

4. यशोदा से ग्वालिनी शिकायत करने लगी-हरि मेरे घर के सारे बरतन भांडे फोड़कर भाग गए। वे ललकार कर, हल्ला बोलते हुए, मेरे घर में घुस गए, अपने मन में जरा भी नहीं हिचके, डरे। उन्होंने छत से बँधे सिकहर को छोड लिया. घर के लड़कों को मारा और सारा माखन खा गए। उन्होंने सारे घर में दधि-कादों मचा दिया। घर में दही की कीच ही कीच हो गई। मैं घर आई, तो अपने लड़कों को रोता पाया। सुनो महरि, लड़के तो सभी घर में हैं, पर तेरे लड़के जैसा शरारती लड़का किसी भी घर में नहीं है। उसके डर के मारे हाट में,

बाट में, गली में कहीं कोई नहीं निकलकर चल पाता। फाग तो बसन्त ऋतु आने पर होता है पर तेरे कन्हैया ने तो बारहो मास, सब दिन, फागुन मचा रखा है ।यह साँकरी खोर में सबको रोक लेता है। टेढ़ी पगड़ी बाँधता है। तेरे बेटे के लड़कपन में ही जब ये गुन है, तब बड़ा हो जाने पर न जाने कौन सा गुल खिलाएगा। यह कहकर वह ग्वालिनी मन ही मन श्याम को सिहाने लगी। और उस ग्वालिनी की बातें सुनकर महरि यशोदा सकुचा गई और पछताने लगो।

5. ग्वाल-बाल श्यामसुन्दर से विनती करने लगे- हे गोपाल, इस बार हम और बचा लो। इस समय दसों दिशाओं से असत्य आग जल उठी है। इस आग से बाँस पट-पट की ध्वनि करते हुए फटे जा रहे हैं। काँस और कुश चट-चट की ध्वनि करते हुए जले जा रहे हैं। ताड़ और तमाल के वृक्ष झुलसकर लटक गए हैं। फूट-फूट कर अंगार आसमान में उछले जा रहे हैं। फल भी फटे जा रहे हैं। आग की भयंकर लपटें झपटती हुई आगे बढ़ी आ रही हैं। पृथ्वी पर और आकाश में धुएँ के कारण अन्धकार छा गया है इस अन्धकार के बीच-बीच में आग की लवरि चमकती जा रही है। हिरन,

शूकर आदि पशु और मोर, पपीहा, कोयल आदि पक्षी सभी बेहाल होकर इसमें जले जा रहे हैं।

ग्वाल-बालों की यह विनती सुनकर हरि ने हँसकर कहा मन में बिलकुल मत डरो। कुछ नहीं होगा। तुम लोग अपनी-अपनी आँखें बन्द भर कर लो। हरि के वदन में यह आग समा गई। हरि ने दावानल को पी लिया और सभी ग्वाल-बालों को भय रहित कर दिया।

6. यशोदा मैया 'कन्हैया, कन्हैया' कहकर पुकारती जा रही हैं उन्होंने बलराम को आगे आते हुए देखा और पूछा- 'बलराम तेरा छोटा भैया कन्हैया कहाँ है?' बलराम बोले-' मेरा भैया अभी-अभी आया ही जाता है। मैं उसे तेरे सामने ला दिखाता हूँ। जरा धैर्य धारण करो। तुम जरा प्रतीक्षा करो।'

यशोदा मैया यह सुनकर कन्हैया की बलैया लेने लगीं। फिर वह कहने लगी-'बलदाऊ, तू मुझे झूठ-मूठ की सांत्वना दिए जा रहा है। यह कहकर वे धरती पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। वे पुत्र को देखे बिना अत्यन्त विकल हो गई थी और कहे जा रही थीं-'हाय मेरा बालगोविन्द कहाँ है?'

गोस्वामीतुलसीदास

हिन्दी भक्ति साहित्य के 'चांद' होकर व्यवहृद तुलसीदास लोकनायक और लोकमंगल के विधायक माने आते हैं । गहान कवि, दार्शनिक, समाज सुधारक और महान रामभक्त भी थे। युगपुरुष तुलसीदास एक महान दृष्टा होने के साथ महान सृष्टा भी थे। उनके जीवन के बारे में सर्वसम्मत पूरा प्रमाण प्राप्त नहीं है। संवत् 1554 में जन्म होने का अनुमान है। वे सरयूपारी ब्राह्मण थे। पिता आत्माराम दूबे और माँ हुलसी अनुमानित है। पत्नी का नाम रत्नावली था। पत्नी की भर्त्सना के कारण ही वे राम के अनन्य भक्त बन गए थे। वे स्वामी नरहरिदास से दीक्षा लेकर आजीवन रामभक्ति में तल्लीन रहे। उनके नाम से स्वीकृत 12 रचनाएँ हैं। दोहावली, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका और रामचरितमानस सबसे प्रसिद्ध है । रासचरित मानस महाकाव्य है। मानस को 'भारत का बाइबिल' भी कहा जाता है। हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है यह। इसमें उन्होंने समाज के राजनैतिक,सामाजिक और पारिवारिक जीवन के आदर्श रूप को बुलंद किया है। इनके राम विष्णु के अवतार है। सगुण निर्गुण भक्ति का समन्वय इसमें पाया जाता है। ज्ञान और

भक्ति को अभेद मानते हुए भी भक्ति पर ही अधिक बल दिया गया है। अथवा 'सेव्य सेवक भाव बिनु भव न तरिय उरगारि' –तुलसी समन्ययवादी रहे। शैवों वैष्णवों भक्ति और ज्ञान, तथा कर्म के धार्मिक समन्वय करने लगे। अवधि और ब्रज भाषा पर उन्हें समानाधिकार था। वे मानव मनोवृत्तियों के सच्चे परखी थे। अतिसूक्ष्म भावों को पहचानते थे। लोकमंगलकारी भावना से परिपूरित समन्वयवादी तुलसीदास हिन्दी के सबसे महान भक्त कवि माने जाते है।

1.हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ।।

अर्थ - यह दोहा उस समय के बाद का है जब हनुमान को मैनाक पर्वत विश्राम करने को कहता है। तब हनुमान जी क्या करते हैं उसका वर्णन यहां पर तुलसीदास ने किया है। हनुमान जी मैनाक पर्वत को हाथ से छू बस देते है और कहते हैं भाई मुझे भगवान राम के काम करे बिना विश्राम कहाँ।

2.राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।

आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ।।

अर्थ - यह श्लोक सुरसा के द्वारा कहे गए वचन को बताता है और के उद्बोधन में तुलसीदास ने इसे लिखा है। सुरसा कहती ही तुम श्री रामचंद्र जी का सभी कार्य करोगे, क्योकि तुम बल बुद्धि के निधान हो अर्थात भंडार हो। यह आशीर्वाद देकर सुरसा जो है वहाँ से चली गई, तब हनुमान जी हर्षित होकर वहां से आगे चले गए।

3.पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार ।

अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ।।

अर्थ - यह तुलसीदास का दोहा उस समय का है जब हनुमान नगर में अर्थात लंका में प्रवेश करने की सोचता है। हनुमान नगर के बहुत सारे रखवारो को देखकर मन में विचार करते हैं की, अत्यंत छोटा रूप धारन करके रात को नगर में प्रवेश किया जाए।

Module 2

सखि वे मुझसे कहकर जाते

श्री मैथिलीशरणगुप्त

बाबू श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संवत् 1943 में चिरगाँव, जिला झाँसी में हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ रामचरण था। सियारामशरण गुप्त आपके कनिष्ठ भ्राता थे। आपके ऊपर अपने पिता के काव्य-प्रेम, वैष्णव भाव, राष्ट्रानुराग एवं उदात्त संस्कारों का काफी प्रभाव पड़ा है। आपने घर पर ही बंगाली, मराठी एवं संस्कृत आदि भाषाओं का सम्यक् ज्ञान अर्जित किया। महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने पर आपको काव्य-सृजन की प्रेरणा मिली और उन्हीं की पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से आप प्रकाश में आए। आगरा और प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से आपको

मानद डी.लिट् की उपाधि प्रदान की गई। 'साकेत' महाकाव्य के लिए आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आपको अपनी राष्ट्रीय चेतना के कारण राष्ट्रकवि कहा जाता है। यह पदवी महात्मा गांधी ने आपको दी थी। सन् 1954 में भारत सरकार ने आपको पदमभूषण की उपाधि से विभूषित किया। स्वतंत्रता के बाद आप दो बार राज्यसभा के सदस्य भी मनोनीत किए गए।

आपका व्यक्तित्व बहुत ही सरल और निश्छल था। सहिष्णुता, उदारता और भावुकता आपके तीन विशिष्ट गुण थे। भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति आपका विशेष मोह था लेकिन आपने नवीनता का कभी विरोध नहीं किया।

प्रकाशित साहित्य

गुप्तजी की रचनाएँ दो प्रकार की हैं, मौलिक एवं संस्कृत तथा बंगला से अनुदित।

मौलिक काव्यग्रन्थ – रंग में भंग,जयद्रथ-वध,पद्याप्रबन्ध, भारत भारती, शकुन्तला, चित्रावली, वैतालिक, किसान, अनय, पंचवटी, स्वदेशसंगीत-, गुरु तेगबहादुर, हिन्दू शक्ति, सैरन्ध्री, वनवैभव-, झंकार, साकेत, यशोधरा, द्वापर, सिद्धराज, नहुष, विकटभट-, मौर्य विजय,

मंगलघट, विपथगा,गुरुकुल आदि।

बंगला से अनूदित-विरहिणीब्रजांगना-, वीरांगना, मेघनादवध-, प्लासी का युद्ध।

संस्कृत से अनूदित-महाकवि भास का स्वप्नवासवदत्ता। अनघ, चन्द्रहास और तिलोत्तमा गुप्त जी द्वारा रचित पद्यबद्ध नाटक हैं। हिडिम्बा और विष्णुप्रिया आपकी उत्तरकालीन रचनाएँ हैं। आपने उमर खैयाम की रूबाइयों का भी हिन्दी अनुवाद किया है।

इस कविता द्वारा कवि ने यशोधरा के विरह में व्याकुल मन का करुण वर्णन किया है। कविता का शुरुआत करने से पहले इस कविता के नायिका तथा नायक के बारे में जानना ज़रूरी है। सखि वे मुझसे कहकर जाते यह बात अपने सखि से बोलनेवाली यशोधरा है, जो गौतम बुद्ध की पत्नी थी। गौतम बुद्ध का पिता का नाम शुद्धोधन तथा माता का नाम महामाया था। शुद्धोधन राजा तथा महाराणी महामाया को जो पुत्र हुआ उसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। परन्तु जन्म के सात दिन बाद ही माँ का देहांत हो गया। सिद्धार्थ की मौसी

गौतमी ने उनकी लालन-पालन किया। राजकुमार सिद्धार्थ के पत्नी का नाम यशोधरा था। उनके बेटे का नाम राहुल था। समाज में फ़ैल रहे क्रूरता, हिंसा के कारण समाज से विरक्त होने का विचार उनके मन में आया। उसीका नदीजा एक दिन रात का समय शयनकक्ष में सो रही अपनी पत्नी यशोधरा तथा पुत्र राहुल को बिना बताये छुपके से घर परिवार त्याग करके विश्व में फैले अन्याय, अत्याचार, हिंसा तथा क्रूरता को समाप्त कर मानव मन में दया भाव तथा शांती निर्माण करने के उद्देश्य से निकल गये। उसके बाद जब यशोधरा को इस बात की खबर लगी तो वे बहुत व्याकुल और दुखी हो गयी। उसी दुःख भरी व्याकुलता में वह अपनी सखी के साथ बात कर रही है। और सखि को बता रही है कि हे सखि वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा अपने सखि से कह रही है कि क्या वे मुझे कहकर जाते तो क्या वे मुझे अपने पद की अर्थात् अपने मार्ग की बाधा समझते। यशोधरा को यहाँ पर समझ में नहीं आ रहा है कि वे उनसे कहकर क्यों नहीं गये।

यशोधरा के मन में सवाल पैदा होता है कि वे मुझे बहुत मानते थे। मुझ से प्रेम करते थे। मेरा सम्मान करते थे। मेरी हर बात मानते थे। ऐसे थे वे। फिर भी क्या उन्होंने पूरी

तरह से मुझे पहचाना? मैं तो उन्हें ही अपने जीवन में मुख्य स्थान दिया था। उनके सिवा मेरे जीवन का कोई लक्ष्य नहीं था। उनकी हर बात को मैं ने मख्य समझा था। उनके मन में जो आता वही मैं करती थी। यहाँ पर सिद्धार्थ के प्रति यशोधरा का समर्पण भाव का प्रेम प्रकट होता है।

अगर वे मुझे बताकर जाते तो मैं खुद उनकेलिए एक क्षत्राणी की तरह स्वयं अपने प्रियतम को पलभर में ही सुसज्जित करके उन्हें रण में अर्थात् उनके लक्ष्य की तरफ भेज देती। मैं उनके पद की बाधा कभी नहीं बनती। काश! वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा अपने भाग्य को कोस रही है। सिद्धार्थ जैसे पति और उनके प्रेम को पाकर यशोधरा गर्व का अनुभव करती थी। लेकिन अब वह अपने भाग्य को कोस रही है। वह कह रही है कि मेरा भाग्य भी आज अभागा हो गया है। और पति प्रेम को लेकर जो गर्व मेरे मन में था वह विफल हो गया है। जिन्होंने मुझे प्रेम के साथ अपनाया था। उन्होंने ही मेरा त्याग कर दिया है। वही मुझे छोड़कर चले गये है। अब तो बस उनकी याद मात्र रह गयी है।

यशोधरा अपनी सखी से कहती है कि यदि वे मुझ से कहकर जाते तो शायद उनके ही नयन उन्हें निष्ठुर कहते। अब जो आँसू उनके नयन से बहते उन आँसुओं को उनका दयालू ह्रदय कैसे सह पाता? यदि सहकर भी वे जाते तो वे खुद पर तरस ही खाते। खुद पर पश्चताते। कवि बता रही है कि यहाँ यशोधरा को ऐसा लग रहा है कि एक तरह से अच्छा ही हुआ, वे मुझे कहकर नहीं गये। नहीं तो उनका मन उनके लक्ष्य कार्य में नहीं लगता।

यशोधरा अपनी सखि से कहती है कि वे अपने मर्ज़ी से जहाँ भी जाए वहाँ अपने मक्सद में कामयाब रहे। संपूर्ण सिद्धि अर्थात् सफलता पूर्ण ज्ञान तथा अलौकिक शक्तियां वे आनंद से, सुख से हासिल करें। इस संसार के दुःख से उन्हें दुःख न लगे। यशोधरा आगे कहती है , उन्होंने जनकल्याण हेतु, जनसिद्धि हेतु वनागमन किया है। मैं किस मुख से उन्हें उपालम्ब दूँ? अर्थात् मैं किस मुख से उन्हें शिकायत करूँ? मैं किस मुख से उन्हें उलाहना दूँ? उनके जाने से मैं अधिक दुखी, अधिक व्याकुल हो जाऊँगी। इसी भय के कारण वे मुझे बताकर नहीं गये। मेरे दुःख का, मेरे व्याकुलता का ख्याल उन्होंने किया। इसके कारण भी आज वे मुझे और भी अधिक भाने लगे है। अच्छे लगाने लगे है।

आगे यशोधरा अपने सखि से कहती है कि वे मुझे छोड़कर गये है, लेकिन एक दिन लौटकर भी आयेगे। और जब आयेगे तब मेरे लिए, इस पूरे संसार केलिए कुछ अपूर्व, अद्भुत, कुछ अनुपम, सर्वोत्तम लेकर आयेगे। मेरे रोते प्राण तब उन्हें देखेंगे। लेकिन उस समय क्या मैं उन्हें गाते-गाते , हँसते-हँसते मिलूँगी? इस प्रकार का सवाल यशोधरा के मन में रह जाता है। यशोधरा बार-बार अपने सखि से कहती है कि सखि वे मुझसे कहकर जाते।

यशोधरा के विरह में व्याकुल और दुखी मन को प्रस्तुत करने का प्रयास कवि ने यहाँ किया है।

जागो फिर एक बार

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(जन्म-29 फरवरी 1897 ई-मृत्यु-15 अक्टूबर 1961 ई०)

बंगाल के महिषादल में जन्में निराला जी, जिनका बचपन का नाम सूर्यकुमार था, महिषादल के राजघराने में रहकर अंग्रेजी, बांग्ला, संस्कृत भाषाओं को सीखने के साथ

ही साथ संगीत और कुश्ती लड़ने का अभ्यास भी करते रहे। ढाई वर्ष की अवस्था में माता का देहान्त हो गया। स्वाभिमानी पिता रामसहाय तिवारी की देखरेख में ही पालन पोषण हुआ। 14 वर्ष की अवस्था में मनोहरा देवी से विवाह हुआ। 19 वर्ष की उम्र में दो बच्चों के बाप हो गये और पिता की मृत्यु हो गयी 1938 के इन्फ्लूएंजा में चाची चाचा गुजर गए। कुछ वर्षों बाद पत्नी की भी मृत्यु हो गयी।सन् 1920 में गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्पादकत्व में स्वदेश प्रेम पर उनकी पहली कविता और सरस्वती में 'बंग भाषा का उच्चारण' नाम से पहला लेख छपा। जीवन के अन्त में उन्हें आत्म विक्षेप हो गया था। समन्वय, मतवाला, सुधा आदि पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे।

निराला की प्रसिद्ध रचनायें हैं परिमल , अनामिका, अर्चना, गीतिका, नये पत्ते, तुलसीदास, सरोज समृति, अणिमा, सांध्यकाकली काव्य संग्रह; अप्सरा, अलका, निरूपमा, प्रभावती, चोटी की पकड़ और काले कारनामे- उपन्यास , लिली, सखी, सुकुल की बीबी, देवी कहानी संकलन और कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चतुरी चमार- रेखा चित्र तथा प्रबंध पद्मा,प्रबंध प्रतिमा और चावुक आदि आलोचना ग्रंथ।

निराला हिन्दी के एकमात्र ऐसे कवि हैं, जो अपने काव्यशिल्प को निरन्तर विकसित करते रहे हैं। छंद की मुक्ति के द्वारा उन्होंने भाषा और कविता को भी मुक्त किया। कविता में संगीत और लय के नूतन प्रयोग किये। तुलसीदास, जागो फिर एक बार, भारती वंदना, राम की शक्ति पूजा आदि कविताओं में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पुनर्जागरण के साथ-साथ आत्मशक्ति के जागरण के माध्यम से राम-रावण के शाश्वत और तात्कालिक संघर्ष की मुक्ति का नया विधान उन्होंने पेश किया। 'बादल राग', 'तोडती पत्थर', धीरे-धीरे पैर बढाओ, राजे न रखवाली की कविताओं में सामाजिक जीवन के क्रांतिकारी तत्वों के संयोजन से होने वाली उथल-पुथल का चित्र प्रस्तुत करके कविता और सामाजिक यथार्थ को नया आयाम दिया। निराला के गीतों में प्रगीतात्मकता के साथ अन्तर्निहित संगीतात्मकता मिलती है जो रचना के बनावट और बुनावट का हिस्सा होता है। 'भारतीवंदना' राष्ट्रीयता मात्र का ही नवजागरण कालीन धार्मिकता के संश्लेष का प्रतीक है। स्नेह निर्झर बह गया है। निराला के आत्मतोष और सांसारिक यथार्थ का ही नहीं कविता की अमरता का भी प्रमाण है। निराला में विद्रोही चेतना, पौरुष और आवेगमयता के साथ दुःख से निरन्तर मंजते रहने के

कारण गरबीली गरीबी से उत्पन्न वेदना, विसंगति बोध और आध्यात्मिकता भी है।सरोज-स्मृति, स्नेह निर्झर बह गया है और अन्त में लिखे गीत इसके प्रमाण हैं। निराला निश्चय ही हिन्दी के निराले कवि हैं जो चिर नवीनता की खोज करते रहे। उनसे अधिक प्रयोग अभी तक किसी कवि ने नहीं किया।

1.जागो फिर एक बार!

.....

.....

बंद हो रहा गुंजार-

जागो फिर एक बार!

कवि प्रकृति के मोहक चित्रों के माध्यम से भारतवासियों को उनकी सुप्तावस्था से जागृत करने केलिये प्रेरित करते है। कवि कहते है- हे भारत के निवासियों एक बार फिर जाग जाओ। रात्री में आकाश के समस्त तारे तुम्हें जगाने का प्रयत्न करते रहे परन्तु वे सब हार गये। फिर भी तुम्हारी निद्रा नहीं टूटी। अब प्रात:काल समीप है और सूर्य के

नवीन किरणें लालिमापूर्ण पंखों को खोलकर द्वार खोल रही है। अत: तुम नींद से जाग जाओ। तुम्हारी आँखें भ्रमरों के समान मधु के आकर्षण में आबद्ध होकर अपने पंखों को समेटकर मौन भाव से मधुरस का पान कर रही है। या कमल की कलियों में बंद हो गयी है। और उनकी हलचल भी बंद हो रही है। कवि की कहने का तात्पर्य है जैसे भँवरा कमल की आकर्षण पाश में बन्ध होकर स्वयं को विनष्ट कर डालता है उसी प्रकार तुम भी मोहनिद्रा से ग्रस्त होकर वास्तविकता का सामना न करते हुए सपनों की दुनिया में ही लीन हो।

2.अस्ताचल ढले रवि,

.....

.....

जागो फिर एक बार!

दिन के पश्चात् फिर रात्री के आगमन होता है। सूर्य पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है। रात में चंद्रमा की शोभा दर्शनीय है। रातरानी की सुगंध चारों ओर फ़ैल गयी है। चकोर जो अपने प्रिय की दर्शन की अभिलाषा मन में समाये हुए है। वे भावों में भरकर, मौन रहकर, आशाओं को मन में समाये हुए चंद्रमा की ओर एकटक देख रहा है। पतझड़ से

व्याकुल सभी फूल खिलकर झुके हुए है। कलियों के मद से पूर्ण ह्रदयों में फिर से यौवन का उभार आ गया है। ऐसे मादक और पूरक वातावरण की दुहाई देते हुए कवि भारतवासियों को देश की स्वतंत्रता केलिए तत्पर होने का सन्देश देता है।

3.पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,

.....

.....

जागो फिर एक बार!

कवि कहते है कि प्रिय से मिलन केलिए व्याकुल होकर पपीहे पिउ-पिउ की रट लगाये हुए है। विरह से व्याकुल होकर विरहिणी अतीत के मधुर बातों को याद करती है। उन मिलन की रातों की स्मृति में डूब जाति है, जो मधुर थी। और मिलन की वे सुन्दर यादें आज विरह की अवस्था में उसके दुखी मन को और अधिक व्यतीत कर जाति है। और उसके नेत्रों से आँसू ढुलक पड़ते है। उसकी नेत्रों से उमड़े आँसू उसकी व्यथा के भार को कुछ हल्का भी कर जाते है। कवि भारत वासियों को अतीत का स्मरण करके सम्पूर्ण दुखों को भुलाकर स्वधर्म के पालन केलिए प्रेरित करता है।

4.सहृदय समीर जैसे

.....

.....

कब से मैं रही पुकार

जागो फिर एक बार!

कवि भारत के जनता को अपने दुःख भुलाने को कहता है। कवि कहता है अपनी आँखों से आँसू को पोछ डालो। निद्रा के कारण जो तुम्हारी बाहों में अलक्ष्य भर गया है और शिथिलता आ गयी है, उसमें स्वप्नों का जोश भर दो। मन पर जो निराश और साद का वस्त्र पड़ा हुआ है उसको त्याग दो। तुम्हारी मोह निद्रा सुख की अनुभूति में परिवर्तित हो जाए। तुम्हारे सम्पूर्ण अलक्ष्य छूट जाये। कल्पना के समान कोमल,सरल और वक्र फैलने के चुपकेश समूहों को पीठ पर फ़ैल जाने दो। कवि कहना चाहते है कि अपनी कल्पनाओं को खुला छोड़ दो। उनको विस्तार दो। जब तुम्हारे तन और मन थक जाये तो बुद्धि ,बुद्धि में और मन, मन में उसी प्रकार विलीन हो जाए जैसे मधुर सुगंध हवा में खुलमिल जाती है। सभी आत्माओं में एक ही अनुभव बहता रहे, जागृति का।

जन-जन जाग्रत हो जाए। सभी के मन में स्वतंत्रता प्राप्ति का विचार छाया रहे। एक बार फिर से जाग्रत हो जाओ।

5.उगे अरुणाचल में रवि

.....

.....

जागो फिर एक बार!

सूर्य पूर्व दिशा में उदय हो गया है। कवि के कंठ में सरस्वती माँ के प्रति असीम अनुराग भर गया है। प्रकृति पल-पल रूप परिवर्तित कर रही है। प्रकृति में नित्य नवीन परिवर्तन हो रहे हैं। दिन फिर रात ,फिर दिन फिर रात ऐसी ही संसार का चक्र चल रहा है। दिन, पक्ष, मास व्यतीत हो रहे हैं। कितने हजारों वर्ष व्यतीत हो गये है, परन्तु भारतवासी जाग्रत नहीं हुए हैं। वे अभी भी सुप्तावस्था में ही हैं। उन्हें अपने मोह निद्रा का परित्याग करके स्वाधीनता प्राप्ति केलिए अग्रसर होना चाहिए।

जागो फिर एक बार कविता की इस प्रथम खंड में प्रकृति के विभिन्न चित्रों के माध्यम से भारत देश के निवासियों को जाग्रत होकर स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु तैयार होने

केलिए कवि प्रेरित करता है। काल निरंतर गतिशील है। बहुत सारा समय व्यतीत हो गया परन्तु भारत वासियों के नींद नहीं छूटी। पर अब उन्हें आलस्य त्यागकर एक होकर आगे बढ़ना चाहिए। प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र कवि ने खींचे है।

हम भी साझीदार थे

नागार्जुन

नागार्जुन के काव्य में जनपदीय अंचल की मुखरता के कारण ही इनको जनकवि कहा जाता है। नागार्जुन मार्क्सवाद एवं प्रगतिशील चेतना से प्रभावित ऐसे कवि हैं, जिनकी सम्पूर्ण कविता शोषित, पीडित, संघर्षशील व्यक्ति की शोषण के विरुद्ध संघर्ष की कहानी कहती है। उनका स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ ही उनकी कविता की मूल प्रेरणा बना है। सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्यया-त्रा में नागार्जुन का काव्य मिट्टी की सोंधी गन्ध की वजह से अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

नागार्जुन का जन्म बीहार के दरभंगा जिले के तरौनी गांव में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ। 1911 में जन्मे

नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनथ मिश्र या| बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर इन्होंने अपने नाम के आगे नागार्जुन लिख लिया। इसके अतिरिक्त इन्हें 'यात्री' नाम से भी जाना जाता है। इनके कविता-प्रेमी सम्मान से इन्हें 'बाबा' कहकर भी सम्बोधित करते थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय पाठशाला में हुई, बाद में काशी और कलकत्ता जाकर इन्होंने संस्कृत में आचार्य और शास्त्री की शिक्षा पूरी की। इनकी मातृभाषा मैथिली थी इसलिए इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ मैथिली में ही सामने आती है। 1988 में इनका निधन हो गया।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट प्रगतिशील चेतना के कारण नागार्जुन का काव्य अलग स्थान रखता है।

प्रकाशित साहित्य

काव्य संग्रह- 'युग धारा', 'सतरंगे पंखों वाली', 'प्यासी पथराई आँखें, 'खून और शोले', 'प्रेत का बयान', 'तालाब की मछलियाँ', 'तुमने कहा था' 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने 'हजार-हजार बाँहों वाली', 'पुरानी जूतियों का कोरस', 'रत्नगर्भ','भस्मांकुर'(खंडकाव्य)

मैथिली में-'चित्र','पत्रहीन नग्न गाछ'।

संस्कृत में-'धर्मालोक दशकम्', 'देश दशकम्', 'कृषक दशकम्',श्रमिक दशकम्'।

उपन्यास-'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुःखमोचन', 'उग्रतारा ', 'इमरतिया', 'जमनिया के बाबा', 'हीरक जयन्ती' (अभिनन्दन),'पारो'।

बाल साहित्य-'सयानी कोयल', 'तीन अहदी', 'प्रेमचन्द', 'अयोध्या का राजा', 'धीर विक्रम'।

लघु-प्रबंध- 'एक व्यक्ति: एक युग'(निराला)

सम्पूर्ण रचनाएँ: नागार्जुन रचनावली में समाहित हैं।

सन् 1968 में इनकी मैथिली रचना 'पत्रहीन नग्न गाछ' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला तथा 1988 में मैथिलीशरण गुप्त सम्मान एवं भारत-भारती पुरस्कार से इन्हें नवाजा गया।

नागार्जुन की कविता का शिल्प-कौशल जनपदीय चेतना से संपृक्त है। उनकी भाषा में आंचलिकता एवं क्षेत्रीयता की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। उनकी व्यंग्यात्मक भाषा में लोक-जीवन की स्पष्टता एवं जीवन्तता

देखि जा सकती है। आंचलिक क्षणों का व्यंग्यात्मक स्वरुप कविता को भीतर तक कुरेद देता है। अलंकार इनके यहाँ अनायास चले आते हैं। जन-भाषा का अत्यंत संप्रेषणीय स्वरुप इनकी कविता सशक्त पक्ष है।

सारांश

कवि नागार्जुन को लगता है कि भारत की प्रजातंत्र शासन प्रणाली पट से फिसल गए रथ बराबर है। यहाँ पटरी मतदाता अथवा आम जनता है। रथ को जनप्रतिनिधि है। मतदाता निरपेक्ष शासन शासन, कवि निरूपित है। आदर्श-कर्तव्य निरपेक्ष शासन प्रणाली से कवि दोचार होता है। प्रजातंत्र की विडंबना, असफलता और शासन करने वालों का स्वार्थ इसमें चित्रित है।

महाभारत के सम्राट अंधे धृतराष्ट्र पुत्रवत्सल थे। पुत्र-जेष्ट दुर्योधन के कुकर्म वे अनदेखा करते थे। अपनों के लिए सामाजिक सच्चाई की और वे पराडमुख रहे। कवि ऐसे पिता सम्राट बराबर मोह माया में रहनेवाले जन प्रतिनिधियों को मानता है। वे अपने-अपने मद्लब या स्वार्थ के पीछे पड़े हुए हैं। आदर्श का गला घोंट मनमाने आचरण करते हैं। अथवा शासक या दलपतियों के अंत:करण में असफल अँधा सम्राट

धृतराष्ट्र प्रविष्ट मानता है।

व्यवस्था में, शासन प्रणाली में अंकुश या दिग्दर्शन कर देने वाला बुद्धिजीवी । शासन और समाज को ठीक दिशाबोध उन्हें करना चाहिए। वही उसका सामाजिक दायित्व है। लेकिन वे भी चुप है। शासकों के बराबर वे भी आदर्श से विचलित, कवि निरूपित है। वे भी स्वार्थ जन प्रतिनिधियों का साथ देकर आदर्श को छोड़ कर अपनों के लिए जारी कपट शतरंज के खेल में साझीदार रहे हैं ।सार्वजनिक न्याय-नीति वे परिलक्षित नहीं करते हैं। गदहे बराबर के जन सामान्य की फूल-माला पहनने में ज़रा भी लज्जा उन्हें नहीं महसूस है।

सर्वत्र बेईमानी से चलायमान प्रजातंत्र को नागार्जुन पटरी से छूटे रथ मानते हैं। नियत सुचारू सार्वजनिक व्यवस्थ-से फिसल कर अपनो में केंद्रित शासन व्यवस्थ या प्रजातंत्र कवि निरुपित है। सामाजिक नीति वे कुचली मानते हैं। उसका हम भी साझीदार वे मानते हैं ।

मैंने कहा पेड़

सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

(जन्म-7 मार्च 1911 ई०-मृत्यु-1987 ई०)

अज्ञेय का जन्म उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के प्रसिद्ध बौद्ध स्थल कसया के पास एक खेत में हुआ था, वहाँ उन दिनों उनके पिता प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ हीरानंद शास्त्री का तम्बू लगा हुआ था। मैट्रिक तक की शिक्षा घर पर हुई। इण्टरमीडिएट मद्रास से और बी.एस.स-सी करके क्रांतिकारी संगठन में शामिल हो गये और गुप्त कारखाने में बम बनाने का काम करने लगे। पुलिस ने गिरफ्तारी केलिए 500 का पुरस्कार घोषित कर रखा था। अमृतसर में पकड़े गए। बाद में आजाद हिन्द फौज में शामिल हुए। 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'प्रतीक', 'वाक', 'दिनमान', एवरीमैन', और 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक रहे।देश-विदेश के विविध विश्वविद्यालयों में संस्कृति, कला और साहित्य के अतिथि अध्यापक रहे। यायावरी उनके स्वभाव में थी। साहित्य अकादमी और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित वात्स्यायन अनेक शिल्पों और कलाओं के अच्छे जानकार भी थे।

रचनाएँ हैं सदानीरा भाग-1, 2 कविताएँ; छोड़ा हुआ रास्ता और लौटती पगडंडियाँ (सम्पूर्ण) कहानियाँ; 'शेखर एक जीवनी'भाग 1,2, 'नदी के द्वीप', 'अपने –अपने अजनबी' उपन्यास; अरे यायावर रहेगा याद, 'एक बूँद सहसा उछली' यात्रावृत्तान्त; 'स्मृतिलेखा' संस्मरण; 'त्रिशंकु','आम्तनेपद', आलबाल, योग लिखी स्रोत सेतु, 'सम्वतसर, अद्यतन आदि आलोचना ग्रन्थ; 'भवन्ती', 'अन्तरा ' 'शाश्वती' अन्तर प्रक्रियाएं तथा 'तारसप्तक', 'दूसरा सप्तक', 'तीसरा सप्तक' आदि सम्पादित काव्य संकलन।

अज्ञेय हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और परम्परा के अनुशीलन के महत्वपूर्ण प्रवक्ता रहे हैं। जिस विधा में उन्होंने लिखा उसे अनकी कृतियों ने सम्पन्न किया है। 'तारसप्तक', शेखपुरे के शरणार्थी, रोज, कोठरी की बात, नारंगियाँ आदि कहानियों और उनकी कविताओं के कलात्मक अनुशासन, शब्द चेतना, बौद्धिक सघनता, आत्मस्थ चिन्तनशीलता ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। व्यापक मानवीयता, स्वाधीनता और सृजनशीलता में अटूट विश्वास अज्ञेय की रचना का वैशिष्ट्य है। व्यष्टि और समष्टि की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते हुए अज्ञेय व्यक्ति को मूल्य और सृजन का केन्द्र

मानते हैं। नदी और द्वीप का लाक्षणिक संकेत व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा को समाजिक ही मानता है दोनों की पारस्परिकता और स्वयत्तता का विन्यास कविता को महत्वपूर्ण बनाती है। आँधी, तूफान, बाढ़ से कवि निराश नहीं होता है इन्हें वह भविष्य के सपने का अनिर्वायता मानता है। दोनों की स्वीकृति ही उसके लिए सत्य की स्वीकृतिहै।

अर्थ देते चलना उनके अनुसार मनुष्य का ही गुण है। कविता को वे स्वायत्त मानते हैं। धूप,कनक , अनाज के टुकड़े, तार, सूर्य, कुरर और अनुभोक्ता कवि को एक साथ रखकर कवि ने सूर्योदय का अद्भुत बिम्ब निर्मित किया है जो कलात्मक अनुशासन, संवेदनात्मक गहराई और शब्द संस्कार के बगैर संभव नहीं है। प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता के साथ मनुष्य को उसके माध्यम से प्राप्त सम्पन्नता का प्रमाण है सुबह जब उठा तो धूप खिली थी। अनुभव की अद्वितीयता और भाषा की सहजता को साधनों की कोशिश अज्ञेय में निरन्तर मिलती है। वे अन्तिम समय तक सक्रिय और रचनारत रहे।

इस कविता में कवि बता रहा है, आँधी और बारिश की सामना करते हुए तुम सैकड़ों सालों से यहाँ रह रहे हो। सूरज और चाँद कई बार आते जाते रहे। ऋतु बदले, मौसम बदले लेकिन तुम अडिंग रहे। चारों और हो रहे बदलावों से अपने आप बचकर तुम खड़े हो। सिर ऊँचा करके तुम सालों से खड़े हुए हो।

पेड़ कवि से काँपकर बोला, और पत्तियाँ ऐसा हिली जैसे फुस फुसा रही हो बोली- अरे नहीं नहीं मुझे झूठा श्रेय मत दो, मेरा अपना इसमें कोई देन नहीं है। अगर मैं यहाँ आँधी, पानी सहकर खड़ा हूँ बरसों से तो इसमें मेरा अपना कोई श्रेय नहीं है। पेड़ कह रहा है- अरे, मुझे कई बार झुकना पड़ता है, गिरता है। कई बार ऐसी हुआ कि मेरी शाखायें टूट गयी है,उखड़ता है। बाढ़ आदि आते है तो मैं उखड जाता हूँ। या फिर कई बार ऐसा होता है कि मेरे शाखायें एक दम से सूख जाती है और टूटकर गिरते है। पेड़ कहता है कि मेरे पैरों तले जो ये मिट्टी है जिसमें कहाँ मेरी जड़ें खोयी है , मुझे यह भी नहीं पता। मैं यह जो दिख रहा हूँ, मेरी हरियाली दिख रहे हो, यह तो मेरा बाह्याकार है। वास्तव में जितना मैं आकाश में ऊपर उठा हूँ, उतनी ही मेरी जड़ें नीचे दूर धरती में समाई

है। एकदम मिट्टी के अंतर,धरती के अंतर। मेरी वृक्ष इतने मज़बूत है। तभी मैं यहाँ सर ऊपर करके खड़ा पाया हूँ।

मेरा कुछ श्रेय नहीं है। मेरा अगर कुछ श्रेय बनता है तो इस नाम हीन मिट्टी का है। यह नाम हीन मिट्टी ही मुझे यहाँ खड़े करने का काबिल बनाया है। केवल मिट्टी को ही श्रेय नहीं दे रहा है पेड़। पेड़ कहता है- वह उगता है, डूबता है तो उसकी ऊर्जा से ही मेरी पत्नी मेरेलिए भोजन बनाते है। जोचाँद है उसकी प्रकाश से मेरे में जान आती है। तो चाँद का भरना और छीजना भी मेरे लिए महत्त्व रखता है। और ये जो बादल है, वे उमड़ते है, पसीजते है उससे मुझे पानी मिलता है, उससे मुझे जीवन मिलता है। जो बनते है, जो मिटते है उनका भी मेरे जीवन में श्रेय है। मैं ने बस एक सीख पायी है ज़िन्दगी में जो अपने आप को नष्ट करता है वो ही दूसरों को जीवन दान देते हैं।

जो त्याग की भावना जानता है, वही दूसरों को उपकार करता है, जो खुद मिटकर दूसरों को उपकार करता है । तुम कुछ बन पाये हो तो अपने जड़ों की ओर देखो, अपनी गाँव की ओर देखो, अपनी माँ-बाप की ओर देखो। उनका जो त्याग है तुम्हें यहाँ तक पहूँचाने में सफल हुआ होगा।

Module 3

पुतली में संसार

अरुणकमल

जन्म :15 फरवरी, 1954 को नासरीगंज, रोहतास(बिहार)में

प्रकाशित साहित्य:

चार कविता पुस्तकें-अपनी केवल धार, सबूत, नये इलाके में, पुतली में संसार तथा मैं वो शंख महाशंख। **दो आलोचना पुस्तकें -** कविता और समय तथा गोलमेज। **साक्षात्कार की एक पुस्तक-**कथोपकथन। **समकालीन कवियों पर निबन्धों-की एक पुस्तक**-दुखी चेहरों का श्रृंगार प्रस्तावित। **अंग्रेजी में समकालीन भारतीय कविता के अनुवादों की एक पुस्तक-** वायसेज वियतनामी कवि तो हू की कविताओं तथा टिप्पणियों की अनुवाद-पुस्तिका। साथ ही मायकोव्स्की की आत्मकथा के अनुवाद एवं अनेक देशी-विदेशी कविताओं का अनुवाद।

अनेक देश-विदेशी भाषाओँ में कविताएँ तथा कविता-पुस्तकें अनूदित।

सम्मान : कविता के लिए भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड, श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार, रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार, शमशेर सम्मान और नये इलाके में पुस्तक के लिए 1998 का साहित्य अकादेमी पुरस्कार।

डॉ.नामवर सिंह के प्रधान संपादकत्व में आलोचना का सम्पादन(सहस्राब्दी अंक 21 से)।

सम्प्रति : पटना विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक।

पुतली में संसार कविता महाभारत के प्रसिद्ध प्रसंग से शुरू होती है। प्रसंग है द्रौपती के स्वयंवर की शर्त। जिसमें मछली की आँख में तीर मारना है। और मछली खम्भे द्वारा ऊपर ढांगी है। उसका प्रतिबिम्ब देखने केलिए नीचे तेल से भरी ताल रखी है। और उसी तेल में लक्ष्य को साधना है। किन्तु इस कविता में केवल मछली की आँख और पुतली को ही केंद्र में रखा गया है। इस तरह एक प्रतियोगी कहता है-मैं तो केवल मछली की आँख देख रहा हूँ अर्थात मेरा लक्ष्य मुझे पता है। और मैं उस पर निशाना लगाने केलिए तैयार हूँ किन्तु संसार की असमानतायें मेरे लक्ष्य को भटका रही है।

कवि अरुण कमल ने इस कविता में अपना अलग दृष्टिकोण रखा है। उनका मानना है कि पुतली में मुझे अपने लक्षय के साथ-साथ संसार भी दिखाई दे रहा है। जिसमें जीवन की सच्चाई, ऊँच-नीच, असमानता, भेद-भाव, राजनीतिक जीवन भी मैं देख पा रहा हूँ। कवि मार्क्सवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित है। और यह प्रभाव उनके कविताओं में हमें देखने को मिलता है और पुतली में संसार भी एक ऐसे ही कविता लगती है जिसमें मार्क्सवादी प्रभाव काफी हद तक दिख रहा है।

1.और मैं देखता हूँ,तो मुझे केवल पुतली नहीं

.....

.....

फिर भी पूरा आकाश घूमता लग रहा है

वे कहते है कि जब मैं पुतली पर ध्यान केन्द्रित करता हूँ तो मुझे पुतली के साथ पूरी आँख दिखाई दे रही है गुरुदेव। मछली, खम्भा-जिस पर मछली टाँकी गयी है, ऊपर खुला आकाश, गुरुदेव आप और इस प्रतियोगिता में भाग लेने आये हुए धनुर्धारियों के भीड़, बहुत साड़ी आवाजें सुनाई दे रही है। और मैं तो नीचे तेल की कुंड में देख रहा हूँ।

जिसमें पूरा आकाश घूमता दिख रहा है। अत: कवि कहना चाहते है कि संसार में समानता का भाव होना चाहिए। अपनी लक्ष्य पर निशाना लगाते हुए दूसरों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसलिए उसे मछली की आँख की पुतली में सब कुछ दिखाई दे रहा है।

2.और मुझे मछली की पुतली में घूमती

.....

.....

मुझे मछली की नदी की गंध लग रही है देव

वे कहते है कि मछली की पुतली में एक और चीज घूमती हुई दिखाई दे रही है। प्रभु ये कैसे आँख रखी है? ऐसा लगता है मानो मछली किसी को देख रही है। और उसके अंतर से कोई मुझे भी देख रहा है। अब तो मैं साफ-साफ नहीं देख पा रहा हूँ। क्योंकि मुझे इतनी सारे आकृतियों ने घेर लिया हैं कि उनकी आँखों की बरौनियाँ मेरी दृष्टी को घेर चुकी है। और अब तो मुझे मछली की बदबू भी लगाने लगी है। अर्थात् संसार में व्याप्त असमानता, गरीबी, दु:ख-तकलीफें, राजनीति सब कुछ मुझे दिखाई पड़ रहा है। और इन सब को देखने के बाद मैं अपने व्यक्तिगत लक्ष्य प्राप्ति

और सफलता को प्राप्त करने में कठिनाई महसूस कर रहा हूँ। क्योंकि अगर मैं अपने व्यक्तिगत स्वार्थ केलिए, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने केलिए मेहनत करूँ तो उसका कोई माईने नहीं लगता। इन में कवि के मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

3.मेरी देह में इतनी गुदगुदी

.....

.....

और मैं इतना अधिक सब कुछ क्यों देख रहा हूँ देव!

कवि कहते है कि यह सच्चाई देखकर मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है। मेरे सारे शरीर में इतने गाढे पड़ी है। मैं मेहनत कर-करके शरीर मेरा इतना कठोर हो गया है। फिर भी शरीर कैसे इन सब को देखकर पुलकित हो रहा है। मुझे खुद को आश्चर्य हो रहा है। मुझे यह सारी स्थितियाँ इतनी प्रभावित कर रही है कि मैं सफलता के सारे मन्त्र भूल रहा हूँ। मैं अपनी सारी योग्यतायें भूल रहा हूँ। मैं ने अपनी निष्ठा, मेहनत से जो कुछ भी हासिल किया था सब बेकार हो रहा है। मेरी उँगलियों की ताकत कदम हो रही है। और इस स्थिति के परेशानियों से मेरा ऊर्जा कत्म हो रही है। मेरी

ताकतें कत्म हो रही है। सफलता बेकार लग रही है। मैं अकेला चोटी पर बैठकर क्या करूंगा? जब मेरे चारों और इतना कुछ न खुश होनेवाला वातावरण फैला हुआ है। वह अपने आप से कहता है कि मेरा लक्ष्य तो केवल मछली की पुतली को देखना और फेदना था। हे, भगवान् मैं इतना सब कुछ क्यों देख रहा हूँ? अर्थात् जब तक वह सांसारिक सच्चाई से, जीवन की सच्चाई से, अपनी मेहनत और लगन से अपना लक्ष्य निर्धारित करके उस पर मेहनत कर रहा था। किन्तु जब उसे धीरे ज्ञान होता है कि संसार में उसके भाई-बन्धु इतने परेशानियों में है। तो वह अपने लक्ष्य से भटक रहा है। अर्थात् पूरी कविता में मार्क्सवादी विचारधारा, दृष्टिकोण का भरपूर प्रभाव दिखाई देता है।

बीज-व्यथा

ज्ञानेन्द्रपति

आज के महत्त्वपूर्ण हिन्दी कवियों की पंक्ति में ज्ञानेन्द्रपति का अद्वितीय स्थान है। ज्ञानेन्द्रपति का जन्म जनवरी 1950, पथरा में झारखंड में हुआ। 'आँख हाथ बनते हुए', 'शब्द लिखने के लिए यह कागज बना है','संशयात्मा' और 'गंगा तट' उनके काव्य-संग्रह हैं। ज्ञानेन्द्रपति की कविता विशेष

अर्थ में सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श की कविता है। उनकी कविता हमारे समय की क्रूरता, हिंसा, शोषण, अन्ध उपभोक्तावाद, विश्वबाज़ार, विज्ञापन, पर्यावरण, साम्प्रदायिकता, कला, संस्कृति आदि अनेक संदर्भों को व्यक्त करने के प्रयास में एक निजी मुहावरा विकसित करती है। उनकी कविताओं में एक जनपदीय आभा है, स्थानीयता का गौरव है, आंचलिकता की उजास है तथा जीवन और जगत को मथने-भेदने वाले समकालीन मुद्दों की अनिवार्य अनुगूँज है। ज्ञानेन्द्रपति साठोत्तरी हिन्दी कविता के सबसे ताजा कवि हैं। कवि आधुनिक और उत्तर-आधुनिक समय के द्रष्टा हैं। उन्होंने अपनी अधुनातन कविताओं में मनुष्य को आधुनिक और उत्तर-आधुनिक समय की परिधि में रखकर देखा है। उत्तर-आधुनिक समय में पनपी मुक्त बाज़ार व्यवस्था तथा उदार आर्थिक नीति ने आदमी की जीवन-पद्धति ही बदल दी है। ज्ञानेन्द्रपति ने अपनी कवितवाओं में हमारे समय की इन साँवली सच्चाइयों का वर्णन किया है। उनकी कविता की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने वस्तुनिष्ठता के साथ अपने समय के अनुभवों को कविता में स्थान दिया है।

प्रकाशित साहित्य

शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है, आँख हाथ बनते

हुए, गंगातट (2000), संशयात्मा (2004), भिनसार (2005), कवि ने कहा (कविता संचयन)

कथेतरगद्य:पढ़ते-गढ़ते

नाटक : एक चक्रानगरी

पुरस्कार एवं समान : 'संशयात्मा' काव्य-संग्रह पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार, पहल सम्मान, बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान,शमशेर सम्मान।

व्याख्या

ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं की जड़ें लोक की मन-माटी में गहरे धँसी हैं तो छोटी से छोटी सच्चाई को भी सहेजने का जतन करती हैं। 'बीज व्यथा' के अन्तर्गत कवि मन बहुत ही गहरी अनुभूति से गुजरता है। वे बीज जो कि गाँव की बखारियों, कुठलों और हंडियों में सहेजकर रखे थे, खेतों में अंकुरित होने की उम्मीद में दिनोदिन सूखते चले गए। भारत भूमि का अन्नमय कोश बनने की उनकी आकांक्षा तब धूमिल हो जाती है जब भारत के खेतों पर छा जाने के लिए सुदूर पश्चिम से पुष्ट-दुष्ट संकर बीज आ जाते हैं। साथ ही रासायनिक खादों, कीटनाशकों और जहरीले संयंत्रों की आयातित तकनीक भी आ जाती है। यहाँ के अन्न जल में जहर भरना तो तय ही है माँ की छाती के दूध में भी बगैर

कुहराम कहर ढानेवाली स्थित उत्पन्न हो चुकी है। अब तो बखारी में बन्द बीज बस बूढ़े किसानों की स्मृति में ही बसे हुए हैं। जहाँ उन बीजों को सिंचित होने के लिए केवल अँजुरी भर जल चाहिए होता था इन पुष्ट-दुष्ट संकर बीजों को, जो कि अपने बदन पर क्रीम पाउडर की तरह रासायनिक खाद, कीटनाशक मले हुए हैं, बड़े-बड़े बाँधों के डुबाव जल की आवश्यकता है।

बेजगह

अनामिका

जन्म :1961 के उत्तरार्द्ध में मुजफ्फरपुर, बिहार।

शिक्षा:अंग्रेज़ी साहित्य से पी-एच.डी

प्रकाशित साहित्य

आलोचना -पोस्ट एलियट पोएट्री: अ वएज फ्रॉम कॉफ्लिक्ट टु आइसोलेशन, इन क्रिटिसिज्म डाउन दि एजेज, ट्रीटमेंट ऑव लव ऐंड डेथ इन पोस्ट वार अमेरिकन विमेन पोएट्र; **विमर्श**स्त्रीत्व का मानचित्र-, मन मांजने की जरूरत, पानी जो पत्थर पीता है, साझा चूल्हा, त्रिया चरित्रम् उत्तरकांड; **कविता** -गलत पते की चिट्ठी, बीजाक्षर, समय के शहर में, अनुष्टुप कविता में औरत, खुरदुरी हथेलियाँ, दूबधान-, टोकरी में

दिगन्त :थेरी गाथा :2014, पानी को सब याद था, **कहानी-**प्रतिनायक, **संस्मरण-**एक ठो शहर था, एक थे शेक्सपियर एक थे चार्ल्स डिकेंस, **उपन्यास-**अवान्तर कथा, दस द्वारे का पीजरा, तिनका तिनके पास; **अनुवाद –** नागमंडल (गिरीश कारनाड), रिल्के की कवितायेँ, एफ्रो-इंग्लिश पोयम्स, अटलांत के आर-पार (समकालीन अंग्रेज़ी कविता), कहती हैं औरतें(विश्व साहित्य की स्त्रीवादी कविताएँ) तथा द ग्रास इंज सिंगिंग।

सम्मान : राजभाषा परिषद् पुरस्कार, भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, साहित्यकार सम्मान, गिरिजाकुमार माथुर सम्मान, परम्परा सम्मान, साहित्य सेतु सम्मान, केदार सम्मान, शमशेर सम्मान, सावित्रीबाई फुले सम्मान, मुक्तिबोध सम्मान और महादेवी सम्मान आदि।

सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन।

बेजगह कवयित्री अनामिका की स्त्री विमर्श कविता है। स्त्री विमर्श उनके काव्य की पहचान है। हमारे समाज के कई नियम परम्पराएँ, रीति-रिवाज़ स्त्रियों के विरुद्ध रचे गये हैं।

उसकेलिए तरह-तरह के मापदंड बनाके रखे हैं। उसकेलिए एक जगह निर्धारित कर दी गयी है। इस जगह से छूटने या गिरने मात्र से उसे बिरादरी से बाहर कर दिया जाता है। टूटे हुए केश और नाखून की तरह।

कवयित्री के मन में अपने संस्कृत टीचर के उस श्लोक का अन्वय अब जीवंत हो उठा है और हर पल सवाल करता है, क्या सचमुच 'केश' और 'नाखून' की तरह 'औरतें' भी अपनी जगह से गिरकर कहीं की नहीं रहतीं।

सामाजिक रूढ़ी परंपरा निभानेवाले समाज में लड़का और लड़की में भेदभाव हैं। दोनों केलिए काम का विभाजन किया गया। लड़की का गौण स्थान, श्रम के काम, सहने की सजा। बिलकुल एक ढाँचे में उसे डाला गया। उसी के अनुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी। उसमें भी वही पाठ पढ़ाया गया जिसमें लड़की का अपना स्थान नहीं होती।इस कविता में शिक्षा व्यवस्था के आरंभिक पाठों पर व्यंग्य किया है।

स्त्री के जन्म लेते ही उसे तरह-तरह के बंधनों में जकड लिया जाता है। जिस घर में उसका जन्म होता उस घर में भी उसकी कोई जगह नहीं होती। वे हवा, धूप और मिट्टी होती हैं। कवयित्री चिंतित होती है कि जगह से छूटी हुई औरत

कटे हुए नाखूनों, कंघी में फँसकर बाहर आये केशों सी एकदम से बुहार दी जानेवाली स्थिति से गुज़र रही है। घर छूटे, दर छूटे, छूटे गये लोग बाग़, कुछ प्रश्न पीछे पड़े थे, वे भी छुट गये। इन सब के साथ जगहें छूटती गयी। परंपरा से छूटकर बस यहीं लगता है कि किसी बड़े क्लासिक से पासकोर्स बि.ए के प्रश्नपत्र पर छिटकी छोटी सी पंक्ति के समान हूँ। मैं नहीं चाहती की कोई सप्रसंग सन्दर्भों के पार मेरी व्याख्या करने बैठे। मैं मुश्किल से इन सारे जीवन-संघर्षों को पार करके पहुँची हूँ। मुझे सभी अधूर अभंग की तरह है जो कहीं भी भंग नहीं है। मैं ऐसी ही समझी पढ़ी जाऊँ।

इसप्रकार स्त्रियों की मनोदशा को अनामिका कविता के माध्यम से व्यक्त करती है। युगों से जोस्त्री विरोधी मानसिकता समाज में व्याप्त है उसे कवयित्री बदलना चाहती है।

मेरे अधिकार कहाँ है?

जयप्रकाश कर्दम

जन्म : 05 जुलाई, 1958 को ग्रामइन्दरगढ़ी-, हापुड़ रोड, गाजियाबाद उत्तरप्रदेश में हुआ।

शिक्षा: एम्.ए (दर्शनशास्त्र, हिन्दी,इतिहास), पी-एच.डी (हिन्दी)

प्रकाशित साहित्य

कविता-गूंगा नहीं था मैं, तिनका-तिनका आग, बस्तियों से बाहर, राहुल

उपन्यास—करुण, श्मशान का रहस्य, **कहानी-** तलाश,खरोंच; **यात्रा संस्मरण –**जेर्मनी में दलित साहित्य: अनुभव और स्मृतियाँ;**साक्षात्कार** - मेरे संवाद ; **आलोचना व वैचारिक पुस्तकें-** श्रीलाल शुक्ल कृत राग दरबारी का समाजशास्त्रीय अध्ययन, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन: साहित्य एवं समाज चिंतन , दलित विमर्श: साहित्य के आईने में, वर्तमान दलित आन्दोलन, बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ, अम्बेडकरवादी आन्दोलन: दशा और दिशा , हिन्दुत्व और

दलित: कुछ प्रश्न और कुछ विचार, डॉ. अम्बेडकर, दलित और बौद्ध धर्म, समाज, संस्कृति और दलित, दलित साहित्य :सामाजिक बदलाव की पटकथा, दलित कविता :समकालीन परिदृश्य, दलित साहित्य एवं चिन्तन :समकालीन परिदृश्य; चमार(ब्रिटिश लेखक जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स द्वारा लिखित पुस्तक 'दी चमार्स' का हिन्दी में अनुवाद); मानवता के दूत, डॉ.अम्बेडकर की कहानी, बुद्ध की शरणागत नारियां, बुद्ध और उनके प्रिय शिष्य, महान बौद्ध बालक, आदिवासी देवकथा-लिंगो, हमारे वैज्ञानिक : सी.वी. रामन (बाल साहित्य)

सम्मान : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा विशेष योगदान सम्मान सहित अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

सम्प्रति : निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय।

जयप्रकाश कर्दम ने अपनी अपनी कविता 'मेरे अधिकार कहाँ है' में निम्न वर्ग की श्रेणी में आनेवाले दलितों की दुखों का बहुत मार्मिक चित्रण किया है।

कवि दलित वर्ग की प्रतिनिधि बनकर उच्चवर्ग से कहता है कि तुम तो कोठी-बंगलों में रहते हो और मैं झोपड़ी में। तुम ए.सी -कूलर में सोते हो और मैं श्रम की भट्ठी में तपता हूँ। और तुम दूध-मलाई में नहा रहे हो और मैं तो एक रोटी केलिए तरस रहा हूँ। तुम तो मालिक हो और मैं तो तुम्हारे नौकर हूँ। फिर हम दोनों के बीच समानता कहाँ है? सारी सुख-सुविधाओं से जीनेवाले तुम और एक रोटी केलिए तरसने वाले मैं, हम दोनों के बीच किस प्रकार की समानता है?

धन-धरती-मील, पोखर और तालाब सब तुम्हारे हैं। यानि भूमि पर तुम्हारा स्वामित्व है। शासन-सत्ता यानी अधिकार भी तुम्हारे हाथों में है। तुम उच्च जाति के हो, इस दंभ से मुझे दलित समझकर मुझसे घृणा करते हो। इस भेदभाव के बीच हम में मैत्री का भाव कहाँ है? तुम ही कहते हो कि हम दोनों में कोई भेद-भाव नहीं हैं। हम दोनों के बीच भाईचारा हैं। फिर कैसे तुम उच्च वर्ग बन गया और मैं दलित। जाति-वर्ण का भेद-भाव हम में क्यों हुआ? हिन्दू होने

पर गर्व करने की बात तो तुम कहते हो पर यह बताओ कि हिन्दुत्व राज्य की नगरी में मेरा घर-द्वार कहाँ है?

तुम राम राज्य की बात कहते हो। ऐसा है तो तुम क्यों श्रेष्ठ और मैं क्यों शूद्र रहूँ? सारे अधिकार तुम्हें है। मैं तो हमेशा वर्जनाओं का शिकार बना रहा। तुम हमेशा कहते हो कि दलित न रहे, सब लोग समान है। यह बात कहाँ तक सत्य है? इस आशय का तुमने कहाँ तक स्वीकार किया।

मेरी मांग तुम अनसुना करते आते हो, साथ ही मेरी जीभ पर ताले पड़े हुए है। पशु से भी बदतर अस्पृश्यता समाज में विद्यमान है। पीड़ा के जंजीरों में मैं सदियों से फँसे हुए हूँ। यानी मैं जीवित रहकर भी मुर्दा की समान है। समाज में मेरा मौलिक अधिकार कहाँ है? स्वत्वहीन दलितों का वास्तविक जीवन साहचर्य इसमें चित्रित है। दलित-दरिद्र-पिछड़ अपने अधिकार से अब भी वंचित हैं। इस सामाजिक यथार्थ की ओर कवि ने इशारा किया है।

Module 4

कनुप्रिया

धर्मवीर भारती

उत्तर प्रदेश मध्यवर्गीय आर्यसमाजी परिवार में धर्मवीर भारती का जन्म सन् 1926 में हुआ था। बचपन में ही पिता का निधन हो गया था। फिर भी भारती की शिक्षा जारी रही। प्रयाग विद्यालय से एम्.ए, सिद्ध साहित्य में डी.फिल हासिल कर प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन, शोधकर्ता के रूप में निरत रहे। साथ ही पत्रिकाओं का संपादक भी रह रहे थे। धर्मयुग पत्रिका के सम्पादक बन वे मुबई आये। फिर मृत्युपरांत वही रहे। साहित्योपासना स्नातकीय कक्षा में पढ़ते वक्त शुरू हुई थी। वे मध्यवर्ग के समस्त जीवन साहचर्य अपनी कविता,उपन्यास,कहानी, सम्पादकीयता में प्रस्तुत करते थे। वे चिरस्मरणीय बहुआयामी साहित्य विशेषज्ञ हैं। गुनाहों का देवता, सूरज का सातवाँ घोडा चर्चित उपन्यास है। ठंडा लोहा, बंद गली का आखिरी मकान, सपना नहीं प्रमुख कविता संग्रह हैं। अंधायुग और कनुप्रिया गीत नाट्यात्मक खंडकाव्य है। अंधायुग में युधिष्टिर को

प्रस्तुत कर विश्वयुद्ध की भीषण, कालातीत विभीषिका का चित्र मानवीयता के आधार पर चित्रित है।

कनुप्रिया का संवेद्यता अनूठा है। पौराणिकता,इतिहास, मनोविज्ञान. सामायिकता, भावुकता सब इसमें संश्लिष्ट है। लोक गीत के आड़ में नारी संवेदना के नए सन्दर्भ में कनुप्रिया अर्थात् राधा को प्रस्तुत कर नयी पुरानी संस्कृति का संवेदनात्मक संश्लिष्ट समीकरण वे प्रस्तुत करते है। राधा कृष्ण प्रिया है। राधा कृष्ण-पत्नी नहीं है। राधा कान्हा का कौन है? कोई नहीं। फिर भी कृष्ण का सब कुछ है। राधा कभी भी रूढती नहीं है। सर्वांगीण समर्पित है। कृष्ण इतिहास पुरुष है उनके सामने स्वत्वहीन राधा क्या हो सकती है। राधा का स्वप्न कृष्ण सापेक्ष है। कृष्ण निरपेक्ष राधा का कोई स्वत्व नहीं है। मनोविज्ञान के आधार पर देखे तो विरह ही प्रेम या संयोग की कसौटी है। तब राधा सदा मीराबाई का प्रतिमान बन जीवन बिताती है। यहाँ भारती प्रकृति को प्रतीक बनाकर ऋतु को मानवीय धरातल पर अंकित करते हैं। अथवा कान्हा-कनुप्रिया का संबंध बहुआयामी मानवीय उदात्तता के आधार पर सामयिकता को अपनाते मनोवैज्ञानिक प्रकृति-प्रसूद व्याख्या कनुप्रिया में प्रस्तुत करते है।

कनुप्रिया मानव जीवन के सहज जीवन और उसके सहज तत्मयता के क्षणों को उद्घाटित करने वाली भावुकता का दस्तावेज़ है। इसमें कृष्ण गोपालक से 'महाभारत' के कूडनीतिज्ञ तक बन जाते हैं। राधा आदि से अंत तक भावुकता से युक्त निस्वार्थ प्रणयिनी रह रही है। आधुनिक समाज में ऐसी अर्पित मानसिकता से युक्त कोई भी नहीं है। समाज बदल गया है। राजनीति, कूडनीति, संवेदना, संबंध, पारस्परिकता, संयमिकता सब नए मूल्य के आधार पर निरूपित है। अथवा समाज निरपेक्ष सामयिकता से उत्पन्न नवीन मानसिकता से हम ओतप्रोत है। यही अलगाव या पृथकता, संवेदनहीनता का प्रकट-अप्रकट प्रस्तुति कनुप्रिया के द्वारा भारती इंकित करते है। विराट के सामने सीमित राधा मानवीयता, अथवा मन-प्रकृति की उपासिका प्रतीत है। फिर भी वह कभी भी स्वार्थ नहीं होती। स्वाभाविक परिणाम को वह स्वीकारती है। मानविकता का वह उदात उदाहरण है।

पहला गीत

इस गीत में हमें दर्शन की भावना के साथ-साथ किसी न किसी रूप में प्रकृति के माध्यम से नर-नारी के घनिष्ट प्रणय भाव को दर्शन कराता है। इस में प्रणय, आकुलता तथा

आकाँक्षा दर्शनीय है। यौवन के आते ही नर-नारी परस्पर आकर्षण तथा घनिष्टता का भाव अपने-अपने ह्रदय में संजोते है। इन्हीं भावों को प्रकृति के माध्यम से कवि ने स्पष्ट किया है। यह गीत संबोधनात्मक शैली से प्रारभ होता है।

प्रारम्भ में प्रकृति तथा राधा एक दूसरे से पदागत की अपेक्षा करते है। पद के निकट अशोक का पावन वृक्ष राधा के चरणों की प्रतीक्षा में जन्म से पुष्प हीन खड़ा है। राधा अशोक वृक्ष को संबोधित करती हुई कहती है कि तुम यह क्यों कहते हो कि तुम मेरे चरण स्पर्श की प्रतीक्षा में अर्थात् मेरे सानिध्य पाने केलिए अपने आप को अनेकों बार आत्मविस्मृत कर दिया है। अर्थात् तुमें पाने केलिए, तुम्हारा सानिध्य पाने केलिए तुम में समा जाने केलिए न जाने कितने जन्मों की प्रतीक्षा यानी तपस्या की है। वार्तालाप से स्पष्ट है कि प्रकृति और राधा का घनिष्ट संबंध है।

आगे राधा कहती है कि मैंने तुमें पाने केलिए स्वयं को अनेकों बार धुल में नष्ट किया है। पृथ्वी में समाकर जड़ों के सहारे तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हुई हूँ। और फिर तुम्हारा सानिध्य मुझे प्राप्त हो गया तब में कलियाँ बन, कोंपल बन तथा लाली बनकर संसार में छा गयी। यहाँ अब दोनों को प्रतीक्षा है कि बसंत रुपी यौवन के आते ही वे पूर्ण रूप से

अर्थात् शारीरिक या मानसिक रूप से संतुष्ट होकर नवीन विकास करेंगे।

आगे राधा कहती है कि शायद तुमने मुझे नहीं पहचाना। मैं तो मधुमास की प्रतीक्षा में थी कि वे कब आये और कब तुम मेरे सानिध्य से पुष्पित हो जाओ। समर्पण तो मेरा था अशोक वृक्ष अर्थात् कनु। तुम क्यों कहते हो कि तुम मेरी प्रतीक्षा में खड़े थे। प्रतीक्षा तो मेरी थी।इन्दज़ार तो मेरा था। राधा अनेक बार अनेक जन्मों में गहरे उतरकर मधुमास की प्रतीक्षा में अशोक वृक्ष अर्थात् कनु के रेशों में उसका अंग बनकर सोयी है। किन्तु अशोक का वृक्ष यह सब भूल जाता है। वह प्रेम करके भूल जाता है। वे तो अपनी ही साधना में गर्व में लीन रहा। उसे मेरा ध्यान ही नहीं रहा। यह जो मेरे महावर लगे पाँव है, यह प्रतीक है हमारे प्रेम का कि मैं केवल तुम्हीं में हूँ। और तुम मुझ में हो। हमें कोई पृथक नहीं कर सकता। इसकी लालिमा तुम्हारे प्रति अनुराग को स्पष्ट करती है। अब तक में तुम्हारे भीतर सोयी हुई थी किन्तु अब जब मधुमास आ गया है तो मैं तुम्हारे साथ पंख पसारकर उठूँगी। यह लाल-लाल गुच्छे तथा कलियाँ जोकि मेरा प्रेम पाकर प्रसन्न चित्त है। यह सब मेरा ही विकास है। जब प्रिय और प्रिया, प्रिय जो है प्रिय का प्रेम पा लेती है। तब उसके

हृदय की सुक्षुप्त कामनायें जाग्रत होकर महात्वाकांक्षा के आकाश में स्वच्छंद होकर उठने लगती है। बिछरने लगती है।

अशोक का वृक्ष प्रतीक्षा में खड़ा है। बरसों से पुष्प हीन। उसे प्रतीक्षा है कनुप्रिया की। राधा भी उसीप्रकार से तथा उतना ही प्रणय भाव लिए मधुमास की प्रतीक्षा कर रही है। तब दोनों मिलकर एकाकार हो जायेगे एवं नवीन विकास की पथ की ओर अग्रसर होंगे।

दूसरा गीत

इसमें कवि ने इन्द्रिय भावों का वर्णन किय है। प्रेमी व प्रेमिका के पारस्परिक संबंधों को कवि ने एक नए आयाम में प्रस्तुत किया है। इस गीत में प्रेमी-प्रेमिका की वार्तालाप का वर्णन है। नारी को जब नर का सानिध्य प्राप्त हो जाता है और उस सानिध्य प्राप्त होने पर जो अनुभूति होती है उसी की अभिव्यक्ति करना ही कवि का उद्दश्य है।

प्रिय का प्रिया से अलग या पृथक होने में कोई अस्तित्व नहीं है। प्रिय के उपस्थिति को सितार के तार के समान

बताया गया है। जिसप्रकार वाद्ययंत्र में संगीत छिपा हुआ रहता है, सोया हुआ रहता है उसी तरह नारी के ह्रदय में समर्पण का भाव छिपा रहता है। इस गीत में स्त्रियों के प्रधान गुण व्रीडा भाव को ही दर्शाया गया है। कवि गीत का प्रारम्भ करते हुए कहता है कि प्रिया की प्रतीक्षा पूरी हुई। मधुमास आया और वे प्रिय की रोम-रोम में प्रस्फुठित हो गयी। तभी उसे मधुर संगीत सुनाई दिया। कनुप्रिया उसी संगीत को संबोधित करती हुई कहती है कि आज आकस्मात ही मेरे शरीर के तार झंझना उठी है। कारण उसे अपने प्रिय अर्थात् कनु का सानिध्य प्राप्त हो गया है। जिससे प्रिया राधा का शरीर सितार के तार के समान झंझना उठा है। इस झंझनाहट में उसका समर्पण, लज्जा,प्रणय एवं संकोच सभी कुछ अंतर निहित है। ऐसी स्थिति में वे कनु से पूछ बैठती है कि प्रियतम तुम कब से मेरे भीतर सोये हुए थे। प्रिया जब प्रिय से मिलने जाती थी तब वह लज्जा का अनुभव करती है। इसी कारण वह अपने शरीर को आवरण से ढक लेती है। अर्थात् अपनी लज्जा भाव के कारण उसका जो मूँह लाल हो जाता है उसे वे अपनी हथेलियों से ढक लेती है। इसी कारण राधा सदैव अन्धकार में ही कनु से मिलती थी। उस समय

राधो को बहुत लाज आती थी। प्रकाड अन्धकार में गोपनीयता एवं एकांत की ओर भी कवि ने संकेत किया है।

पर अभी इस प्रकाड मिलन की वेला में लज्जा का आवरण हट गया है ।तथा प्रणय भाव से राधा कहती है मुझे एक अपूर्व आनंद की प्राप्ति हुई है। इस अवसर पर आज अपने को छिपाने के लिए उसके पास कोई आवरण नहीं है। वे कहती है आज मेरे शरीर का रोम-रोम झंकार उठा है। हे मेरे स्वर्णिम संगीत, सच बतलाना कि क्या तुम इसी मिलन की वेला की प्रतीक्षा में मेरे भीतर सोए हुए थे? अंत में अपने प्रिय को स्वर्णिम संगीत से संबोधित करना और कब से मुझ में छिपे सो रहे थे प्रश्न करना, इस प्रश्न के साथ ही इस गीत की समाप्ति होती है।

राधा की यह प्रश्नाकुलता इस बात की ओर संकेत करती है कि उसे प्रिय से कोई संतोषजनक या आश्वस्त करनेवाला कोई उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

तीसरा गीत

प्रस्तुत गीत में कवि ने राधा द्वारा कृष्ण को वनदेवता समझकर प्रणाम करना और कृष्ण द्वारा उसके उस प्रणाम का कोई उत्तर न देना, इस घटना को वर्णित करता है। यहाँ पर

कृष्ण राधा द्वारा दिया प्रणाम का उत्तर न देने का कारण यह है कि वे राधा को आंशिक रूप से स्वीकार नहीं करना चाहते। वे तो राधा पर पूर्णत: प्राप्त करना चाहते है। क्योंकि कनु और कनुप्रिया का संबंध तो जन्म-जन्मान्तर का है। अपने इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि तीसरे गीत में वर्णन करता है कि संध्या के समय जब राधा घाट से लौटते समय कृष्ण को अधिकतर कदम्भ वृक्ष के नीचे शांत भाव से ध्यानमग्न अवस्था में देखती है तो वे कनु को कोई वनदेवता समझकर प्रणाम करती है। सर चुकाती है। किन्तु कृष्ण उस प्रणाम को कभी स्वीकार नहीं करते। अर्थात् वे राधा के उस अभिवादन का कोई उत्तर नहीं देते। वे तो राधा को भाव विमुक्त होकर देखते रहते है। और कोई उत्तर नहीं देते। वे इसलिए उत्तर नहीं देते कि शायद कनु राधा को आंशिक रूप से नहीं स्वीकार करना चाहते बल्कि वे तो पूर्ण रूप से राधा को आत्मसात करना चाहते है, अपनाना चाहते है। इस कारण कनु को राधा के ऐसे वचन सुनने पड़ते है। राधा उन्हें निर्लिप्त, अडिंग,वीतरागी और ध्यानमग्न जैसे भावों से यानी शब्दों से संबोधित करती है।

राधा ने उन्हें प्रणाम करना भी धीरे-धीरे छोड़ दिया क्योंकि राधा जब ये देखती है कि वह ध्यानमग्न वनदेवता

उसके प्रणाम का कोई उत्तर नहीं देता तो वे एक छल्लाहट से घिर जाती है। राधा कहती है कि तुम्हारी ये अस्वीकृति पर भी मैं तुमसे अलग न हो सकी। मुझे मालूम था कि तुम मेरे प्रणाम को अस्वीकार करके तुम मुझे एक दिन अखण्ड बंधन में बाँध लोगे कि मेरी ये प्रणाम बद्ध अन्जलियाँ और बाँहें कभी भी तुम्हारे बंधन से मुक्त न हो पाएगी। अर्थात् मैं हमेशा-हमेशा केलिए तुम्हारी हो जाऊँगी।

एक ओर तुमने मेरे प्रणाम अस्वीकार करके मुझे आघात पहूँचाया था। तब मैं ने तुमें निश्चल जाना था। भावहीन जाना था। किन्तु मैं तुम्हारे ह्रदय की वे भावना न जान सकी जिससे तुम मुझे हमेशा केलिए अटूट बंधन में बाँध लेने केलिए व्याकुल थे। और तुम मुझे पूरी बाँध लेने का प्रयास करते रहे थे। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरे प्रणाम मुद्रा को नहीं वरन मेरे अंग-अंग को, मेरी एक-एक गति को पूर्णत: बाँध लेने की आकांक्षी हो। राधा अंत में उपलाम्ब देती हुई कहती है कि मैं अजानक यह न समझ पायी कि तुम तो सम्पूर्ण रूप के मेरे लोभी रहे। आखिरकार तुम मेरे इस वृक्ष प्रणाम को स्वीकार क्यों करते? तुम तो मुझे पूर्णता में देखना चाहते थे। दूसरी ओर मैं पागल थी जो तुमें केवल वीतराग और निर्लिप्त समझती थी।

इस गीत के माध्यम से जहाँ राधा ने कृष्ण के प्रति प्रणाम करके अपनी श्रद्धा को प्रकट किया है। वही कृष्ण का तटस्थ, निर्लिप्त, अडिंग, वीतरागी कृष्ण के तृण व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है।

चौथा गीत

माँसल संयोग का चित्रण इसमें प्रस्तुत है श्यामल रंग के यमुना के पानी में निर्वस्त्रा राधा अपना प्रतिबिंब देखते वक्त विवस्त्र कनु के गाढालिंगन में अपने को वह पाती है।

कृष्ण को संबोधित कर राधा कहती है –मैं दोपहर को यमुना के घाट पर नग्न अपने प्रतिबिम्ब श्याम जल में देखती थी। वास्तव में यमुना का श्याम जल अपनी गहराई में वह कृष्ण मानती है। अपना प्रतिबिंब वेतलता बराबर पानी की लहर में कंपित पाती है।

वास्तव में श्याम रंग वाली यमुना का पानी विवस्त्र कनु है। उसकी गहराई में कंपित प्रतिबिंब आलिंगन में कसी हुई राधा है। अथवा मांसल संयोग का चित्र यहाँ मिलता है।

पाँचवाँ गीत

रासक्रीडा याद कर कनुप्रिया बताती है अब यह घर के काम निपटाकर कदंब की छाया में अलसता से किकतेव्यविमूठ लेटी रहती है। अथवा वह रासलीला के बाद अपना घर वापस आना नहीं चाहती थी ।भागवत की 'रास पंचाध्यायी' के अनुसार कृष्ण ब्रहा है, गोपिकाएँ उसका अंश है। रास लीला में ब्रह्म गोपिकाओं को परिपूर्ण बनाता है। लेकिन गोपिकाएँ ब्रह्म में विलीन होना चाहती हैं। लेकिन उन्हें लौटना पडता है।

राधा पूछती है –रासक्रीडा अवसर पर मुरली के धुन के अनुसार श्याम तन कृष्ण के चारों ओर वह धिरकने या नाचने लगी। कृष्ण अंशत उसे स्वीकार कर, अथवा स्पर्श, चुंबन, आलिंगन द्वारा परिपूर्ण छोड देता हैं। वास्तव में राधा आत्मा का प्रतीक होकर परमात्मा कृष्ण में सदा के लिए विलीन होना चाहती है। फिर भी उसे लौटाया गया है। इसपर अब वह परेशान, दुखी है।

रास -लीला में अंशत: स्वीकार कर तुम मुझे परिपूर्ण या परमानंद बनाया गया। फिर भी वापस लौटा दिया गया इस पर फिर कृष्ण के पास आने का विचार छोड़ देती तो भी तुम मुझे अपने पास खींच लेते हो। यह सरासर विचित्र बात है।

अब श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध की भूमिका में निरत गौरवपूर्ण काम में लगा है।

आम्र-बौर का गीत

इसमें राधा अपने चरम साक्षात्कार की कई अनुभूति स्तर के बारे में याद करती है। वह अपने को कृष्ण की जन्मांतर की लीला संगिनी मानती है। तब एक मधुर भय, अनजाना संशय, गोपन की प्रेरणा, विचित्र वेदना, अकारण उदास वह अनुभूत करती है। वास्तव में इन सब अनुभूति का कारण लज्जा है, शारीरिक और मानसिक लज्जा। राधा का मान कर बैठना कृष्ण को निराशा प्रतीत है, वही फिर राधा की निराशा महसूस है। संयोग की मधुर धटनाएं वह यों निरुपित है।

राधा कनु को पुकार कर कहती है –कभी-कभी तुम्हारे साथ के तन्मय क्षणों में मैं निश्चेष्ट हो जाती हूँ। क्या तुमें मालूम है कि इसका क्या रहस्य है? वास्तव में तुम्हारे जन्मांतरों की रहस्यमय लीला की में एकांत संगिनी हुँ। मैं तुमसे एकदम अलग नहीं हो सकती। है प्राणेश्वर लज्जा मात्र शरीर की ही नहीं मन को भी होती है। मन में मधुर भय, अज्ञात संशय, हठीला गोपन अवर्णनीय वेदना, अजीब उदास आदि उस चरम मुहुर्त में मुझे अधीन कर लेते प्रतीत है ये

सब सिरचढी चचल सहेली बराबर मुझे धेर लेते है। फलतः निष्क्रियता अनुभूत है। इसलिए मैं आप के पास पहूँच न सकती। तब आम्र मंजरियों के बीच रहकर मेरा नाम पुकारते हो।

राधा आगे कहती है तुम फूल युक्त आम्र की शाखाओं के बीच रह कर बाँसुरी बजाकर मुझे बुलाते रहे। सूरज की किरणे तुम्हारे माथे के मोरपंख से विवश हने लगी। गायें कुछ देर तुम्हारी ओर ताकने के बाद अपने पथ पर नंदीग्राम चलने लगी। यमुना के मछुआरे नॉव बांध कर पतवार कंधे पर रखकर चले गए। अथवा देर तक कृष्ण राधा को बुलाते रहे। फिर भी वह आई नहीं।

राधा आगे कहती है देर तक प्रतीक्षा करने के बावजूद भी राधा न आने के कारण कृष्ण ने मुरली छोड़ दिया। फिर आम के नीचे तन से सड़ कर बैठते रहे। अंत में निराश होकर पगडंडी पर चलने लगे। इस बीच वे आम्र फूल के गुच्छे तोड़े गये थे। आगे बढ़ते वक्त उनकी ऊँगलियोँ अनजाने ही गुच्छे को चूर कर वन घास के बीच की पगडंडी में बिखेरते रहे । यह राधा अपनी माँग को सिंदूर लगाने के बराबर मानती है। फिर भी राधा पास गई नहीं। अनजाने में भी मांग भरने वाले बताती है। माँग भरते वक्त साधारणतया

स्त्री, लज्जा से मुख ओट कर सिर झुकाकर प्रणाम करती है। राधा ऐसा नहीं करती है। क्यों कि यह उसकी भावना है, प्रतीति है।

कनुप्रिया की विवशता वह प्रकटाती है –तुम्हारे बुलावे पर मैं आई नहीं। मैं तुम्हारी वही पागल लड़की हूँ।जब तुम कदम्ब के तले बैठकर जंगली फूल से महावर बनाकर, अपनी गोद में मेरा पैर संभल कर उसे लगाते थे। तब मैं धनुष बराबर- लज्जा के मारे –दोहरी होती थी। फलत: हाथों से घुटने धाम कर मुख फेर बैठती थी। इस बीच पैर खींच भाग जाती थी। धर पर आकर दीपक के मंद प्रकाश में अर्द्ध रचित महावर की रेखाएँ प्रेम भाव से निहारती थी और चूमती भी थी।

श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद राधा आम्र के समीप आती है। शाखा पकड़कर रोती है। आ नही सकने के कारण निराश है। फिर वह लौट जाती है। तब पथ पर बिखरे फूल उसके पैर पर चुभ जाते हैं। राधा का मानना है सुदूर से भाग आने के कारण कंकङ-काँटा पैर में चुभ जाना स्वाभाविक है। लेकिन फूल का चुभन प्रतीति है। क्योंकि सुहागिन को फूल सुखद अनुभूति प्रदान करता है। लेकिन विरहिणी केलिए वह फूल वज्र जौसा कठोर और चुभनेदायक प्रतीत है। तुमसे

साक्षात्कार करने के ऐसे बहुत से अवसर लज्जा के कारण नष्ट होता है। तुम्हारी रहस्यमयी पुकार सुनाई नहीं जाती। मैं एक अज्ञात भय, अनजान संशय, आग्रही गोपन, अवाक उदासी सब लज्जा के कारण अनुभव करती हूँ। फिर भी मैं उन सबको चीर कर आऊँगी। तब क्या तुम अपने चंदनगधी बाँहें फैला कर मुझे पूर्णतः आलिंगन में भरकर होशहीन बना दोगे।

आम्र –बौर का अर्थ

राधा अपने को नासमझ मानती है।आम्र बौर का अर्थ वह समझती नहीं है। वह अपने प्रिय को अपने अनुभव के आधार पर चन्दन, शिल्पी, लीलाबन्धु,मित्र आदि मानती है। कृष्ण भेंट स्वरुप भेजे कमल,बेल-फूल, अगस्त्य फूल का अर्थ कृष्ण को राधा तक पहूँचने वाली पगडंडी प्रतीत है। राधा का पागलपन कनु को प्रिय रहा। यह लोक हँसाई भी प्रतीत है।

वह कनु से कहती है- पगडंडी में बिखरे आम्र-बौर का अर्थ मुझे मालूम नहीं है। इसपर क्रोध न करने का अनुरोध करती है। पहले भेंट स्वरूप अधखुला कमल भेजा था। उसका अर्थ संध्या समय मिलने का आग्रह था। अंजली भर

बेले के फूल भेजा था जो मेरा स्पर्श करने का संकेत था। अगस्त्य के दो फूल भेजा था जो तीसरे पहर सुगन्धित आम की छाया में बैठकर मेरे पैरों में महावर लगाना चाहते थे। आम्र-बौर का अर्थ नहीं समझ पाने पर क्रोध न करने का अनुरोध वह करती है।

मिलन के संदर्भ को राधा याद करती है- कृष्ण का कहना था-राधे तेरे पागलपन , चंचल, अचुंबित पलके तुम तक पहुँचने वाली पगडंडियां है। वहाँ पहुँच कर रीत जाती है। राधे, तेरे कमल नल बराबर के नंगे, गोरे हाथ-पगडंडीयां है वह मुझे तुम्हारे पास पहुँचाकर रीत जाती है। आलिंगन करने का वह साधन है। तुम्हारे अधर, हाथ, सारे अंग चंपक वर्ण, सारा शरीर पगडंडियाँ है। चरम साक्षात्कार के क्षणों में ये सब नहीं रहते। संयोग के चरम मुहूर्त में स्वत्व नहीं रहता, मात्र शून्यता है।

चंदन बराबर का कनु तुम्हारा कहना ठीक है। आलिंगन में मेरा सर्वांग रीत पाती है। शरीर के भार से मुक्ति दी थी। तब रजनी गंध का मधुर सुगंध शेष रहा था। आकार,रूप, वर्ण सब खो गये। चरम साक्षात्कार में स्वत्वहीन एकीभाव राधा महसूस करती है।

कनुप्रिया कृष्ण को संबोधित कर कहती है हे शिल्पी! तुम मुझे नित्य नव रूप में गढ़नेवाले हो। मेरे उलझे बालों के बीच की प्रकाशित माँग में आम्रमंजरी भरकर मुझ तक पहूचना चाहते हो। राधा का सर्वांग कृष्ण को समर्पित हो चुके थे। फिर भी वह शादिशुदा नहीं हो पाती है। मांग भरना ही बाकी है। मेरे लीला बन्धु! तुम्हारी रीति विचित्र है। जिनको तुम शून्य बनाना है उसको तुम सबसे पहले परिपूर्ण बनाते हो। माँग भरकर मुझे कुमारी बन जाने देती हो। मैं नहीं समझ पाती हैं। मेरा नासमझ तुम्हों मालुम है। पानी भरे घडे में अपनी आँखों के प्रतिबिंब पाकर में उसे मछली मानकर पानी बहा देती थी। राधा आगे कहती है तुम मेरे मित्र हो। मैं कभी अपने पराये तक पहचान न पाती हूँ। मेरी मूर्खता को यों रहने दो। वह स्वयं रीत हो जाएगी। नहीं तो भी कोई फरक न पड़ेगा। इसके बावजूद भी तुम मुझे पाकर बेसुध करते हो। इसलिए मैं तुम्हारे पागल हठीली मूर्ख मित्र बनी हूँ।

राधा का कहना है आज मैं सुदूर एकांत में हूँ। तुम्हारा चन्दन बराबर आलिंगन याद करती हूँ।तो मेरा स्थन पीडा झेलता है। आम्रमंजरी बिखेरने के पीछे मेरा आलिंगन करना तुम चाहते थे। वही आशा अंब अपने स्थन की पीड़ा

होते मुझे भी है। आम्र-बौर की गन्ध परुष है। फिर भी परम साक्षात्कार के अवसर पर तुम उसे पसंद करते थे। आम का बौर ताजा, अच्छुता, मौसम का पहला था। उसी प्रकार मैं अच्छूता, ताजा, कुमारी हुँ। मुझ जैसे बौर से मेरे माँग को भरना , अपने से अपने में भर देने बराबर है। प्रिय कनु, तुमने बार बार कहा था मैं अपनेलिए नहीं तेरेलिए तुझे प्यार करता हूँ। राधा को मालुम हुआ कि अपनी माँग अपने बोर से कान्ह ने भर दिया है। सर पर पल्ला डालने को कहने का मतलब नवोढ़ा बनाये रखने का अनुरोध है। सदा कुमारी, अच्छूता रहने का अनुरोध है। राधा कहती है तुम्हारी रीति लौकिक रीति से भिन्न है। साधारणतया प्रिया अपनी प्रियतमा के अच्छूते यौवन को नष्ट करता है। यहाँ कृष्ण सदा अच्छूता यौवन प्रदान करता है। साधारण भाषा तक मुझे मालूम नहीं होती। मैं गोपस्त्री 'दधि ले लो, दधि ले लो' कहकर नगर गली मे घुमते वक्त 'श्याम ले लो, श्याम ले लो' पुकारने लगी। सारे लोग मेरे परिहास करने लगे। ऐसी स्थिति में पागलपन में मांग फूलों से भरने का अर्थ मुझे मालुम नही होता। राधा आगे अनुरोध करती है ,मेरे लीला बन्धु, मैं अब सुदुर एकांत मैं हुँ। आम के बौर की याद मुझे सालती, पूरा शरीर भरे प्रतीत है। बौर के विचित्र गंध बराबर प्यार वेदना

बन प्रतीत है। तुम्हारा विचित्र प्यार पानेवाले को पूर्णता भी मिलती है और पवित्र बनाए रखते हैं।

तुम मेरा कौन हो

कनुप्रिया योगमाया है। जन्मान्तरों में उसकी सहचारिणी है। वह कृष्ण का सर्वस्व है। इस लौकिक जीवन में, सीमित जीवन में उसे यह मालुम नहीं है कि वह कृष्ण का कौन है? यह एक मीमित लौकिक जीवन का प्रश्न है। फिर भी स्पष्ट करना चाहती है कि - अंतरंग सखा, रक्षक, बन्धु, सहयात्री आदि व्याख्या वह देती है। फिरभी वह शक्की है, लोकलाज का शिकार भी है। पुराण-इतिहास में राधा और कृष्ण के जन्मांतरों के संबंध की कई व्याख्या मिलती है

भारतीजी यहाँ कनु और प्रिया के संबंध की व्याख्या राधा की अनुभूतियों के आधार पर निरुपित है। राधा कहती है कनु तुम मेरा कौन हो। कई बार अपने से आश्चर्य, एकाग्रता, एक हद तक जबरदस्ती से यह प्रश्न पूछा था। लेकिन समझ में नहीं आया। मेरी सहेलियों ने भी व्यंग्य, संकेत और कृटिलता से यह प्रश्न दुहराया था। परिजन-गुरुजन ने भी निर्दयता असंतुष्टता से यही प्रश्न पूछा था। राधा याद

करती है - तुम कंटीले लताकुंजों में चटकर माला गुंथने को वहुरंगी करौंदे के फूल तोडकर मेरे आँचल में डाल देते थे। तब मैं सप्रेम गर्व करती थी। अथवा राधा के लिए वह सबसे प्यारा आत्ममित्र प्रतीत था।

जब जंगली अग्नि में जलती शाखाओं, प्रज्ज्वल लपडे और धुआं के बीच निरुपाय, निस्सहाय पडी थी तब तुमने उन सबको चीर कर फूल की थाली की तरह सावधानी से मुझे उठाकर बाहर आए। तब भक्ति, आदर और आभार के साथ कृष्ण उसका अपना रक्षक, बन्धु और भाई प्रतीत थी। ब्रह्म-योगमाया के बीच का यही संबंध है। फिर मुरली बजाकर बुलाते वक्त मोहित हिरनी-सी तुम्हारे पास भाग आई थी। तब मुझे आलिंगन में भर दिया गया था। तब मुझे लगा था कि तुम मेरा लक्ष्य है आराध्य प्राप्तस्थानहै।

कनुप्रिया कभी रूठकर कनु को नकारती भी है- कनु कभी सखियों के सामने चिटाने के कारण, उन्हीं के सामने बताती है- कनु मेरा कोई नहीं है।

कनु को अपना कोई न मानने के क्षणों बाद बादल उमट आने लगा। बिजली गिरने लगी। रास्ता तक जंगल में धूंघला होने लगा। तब राधा कनु को अपने आँचल में ओट कर,

अपने हाथों में धाम कर गाँव की सीमा तक ले आई। तब राधा का मानना था वह स्वयं छोटी है। क्योंकि कनु ने प्रलय से गोवर्धन को बचाने केलिए ऊंगलियों से पर्वत को उठाया था उसे उतनी अधिक क्षमता है।

गाँव की सीमा के पेड़ के तले कनु को बच्चा मान कर माँ सुलभ दलार से उसे अपनी छाती से लगाकर आँचल से बाल पोछती है। यह सुनकर सखियाँ फिर से परिहास करने लगी। अथवा उनको यह करतूत का दूसरा अर्थ विदित है।

कनुप्रिया कृष्ण के साथ का अपना धार्मिक संबंध-प्रकटाती है-कनु तुमने इन्द्र को ललकारा था। उग्र सर्प कालिय को यमुना में छान डाला। तब मुझे लगा कि तुम्हारी शक्ति खुद मै हैं। सीमातीत शक्ति और योग माया भी मैं हूँ। अदमनीय मेरी शक्ति ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है।

लौकिक जीवन की दृष्टि से देखकर कनुप्रिया कहती है बृन्दावन में लता कुज में, संध्या समय मेरी सिंदूर रेखा पर आम के बौर बिखेर कर मंजरी परिणय किया था तब मुझे ससीमित, सिकुडन या परिमित प्रतीत हुआ। यहाँ राधा मात्र उसका लीला सहचरी हो गई है। ब्रह्माण्ड व्याप्त शक्ति-ज्योति न रही। अथवा कनुप्रिया की शक्ति-ज्योति की व्याप्ति मात्र कनु ही है।

क्षण-क्षण में असीम-ससीम होने का आभास राधा को होता है। योगमाया प्रेयसी की यही प्रतीति है। राधा कहती है - मैं तुम्हारी प्रेयसी सीमित, होश आए तब से, कैसे रह सकती हूँ। मैं असीम हूँ। इसलिए दिशाबन्धु कहते हैं। काल-समय सीमातीत है। उनकी वधु-भी अनत है। अनंत काल से आपकी मैं सहचरी हुँ। आगे भी साथ रहूँगी। यात्रा का आरंभ -अंत का स्मरण हमें नहीं है। हे सहयात्री! मैं तेरे साथ हैं। पुरुष और प्रकृति (कृष्ण-राधा) का कलातीन, असीम संबंध यहाँ प्रकट है। प्यार से वह शिकायत करती है - मेरे इस छोटे सीमित लौकिक जीवन में जन्मो की यात्रा मैं दुहराऊँ । अंसख्य भोड से युक्त उस अनंत यात्रा इस सीमित जीवन मैं कैसे दुहरा पाएगा? अभी पता नहीं है कि मैं किस मोड पर हूँ। अनेक खेल, रूप धारण किए गए हैं। परमात्मा आत्मा विष्णु-योगमाया, पुरुष प्रकृति, कनु-कनुप्रिया ये सब अनादि से अनंत तक चालू होगा।

मेरे प्यारे कनु! आधारहीन भूमि के प्राणी नश्वर हैं। ये मुझपर प्रश्नों की वर्षा करते हैं। कोमल पुष्प पाश से वे मुझे बाँधना चाहते हैं। शब्दजाल का प्रयोग करते हैं, तुम्हें सखा, बन्धु, पूज्य, शिशु, दिव्य, सहचर आदि में परिचय कराती हैं। मैं नदी बन तुम्हारे पास बहकर आती हुँ। अथाह समुद्र बन

तुमने मुझे स्वीकारा, अपने में विलीन करता था । तुम असीम, अथाह रह रहे हो आत्मा-परमात्मा का यही संबंध है।

आदिम भय

समस्त सृष्टि में परिव्याप्त अपना लीलातन कनुप्रिया कनु को समर्पित है। लेकिन छायातन ज़रा भयभीत पाता है।

है कनु! अगर हिमावृत खेत-ढालान मेरे कंधे हैं, उसके ऊपर नीलाकाश जैसा तुम्हारा माया है। कंधे पर मुख रखकर खुशामत करने वाला कृष्ण। स्वच्छ चाँदनी में लहराता सागर मेरा विवस्त्र शरीर है । घने मघ बाल है। वह मेरे स्थन को ढंक लेता है। संध्या समय प्रवहमान झरने मेरे सुनहली जंघाएँ हैं। रात प्रेम की गहराई है, दिन हँसी है। हरियाली आलिंगन है। फिर भी मेरा यह भय क्यों? विराट प्रकृति की असीमता फैली राधा ससीम होने की आशंका से भयभूत है।

आकाशगंगा के सुनसान तट पर रहकर पंख टूटे जुगनु बराबर कोहरे के बीच सूर्य-चाँद को मैं देखता हूँ। महाशून्य ब्लैक हॉल है। यह प्रकृति का प्रलयंकारी,सर्वनाश का कारण

है।यह आकाश गंगा राधा अपनी माँग मानती है।सृष्टि-स्थिति-संहार में भी राधा साथ देती है। फिर भी अज्ञात भय का वह शिकार है। राधा कहती है- चाँद की जलती पहाड़ियों की ढालानों पर कही से आये मेघ टकराकर अग्नि रुपी आला बिखरी पंगुडियों जैसे प्रतीत है। यह चाँद मेरे माथे के तिलक क्यों-न-हों। फिर भी अज्ञात भय होता है। सृष्टि-स्थिति-संहार में भी मैं साथ देती हूँ। तो यह भय क्यों? यदि चाँद का संकोच-विकास मेरे इशारे पर है, ब्रह्मांड का गति परिवर्तन मेरे इशारे पर है तो मेरा यह भय क्यों?

मेरा यह भय पर्वत शिखरों पर, समुद्र में, वन में, सुवर्ण झरना पर, लीलातन पर कोहरे की तरह फन फैलाकर लपेट प्रतीत है। संयोग के चरम मुहूर्त में चट्टान बराबर के आपके शरीर पर नग्न जलकन्या बन चटपटाती हुँ। मेरे बाल में सिवार लगा हुआ है। हाथों से फूल छूट जाते हैं। तब भी भय क्यों? लीलातन तुझपर निछावर है तो छायातन क्यों दिया गया है? जिससे ही भय उत्पन्न है।

केलिसखी

संयोग का चित्रण अपनी तीव्रता और प्रगाढता में यहाँ मिलता है। यहाँ राधा का भय नदारक है। मिलन की भावना से वह पागल है।

आज की रात सभी ओर से संयोग की प्रेरण मुझे होती है।वायु का मादक स्पर्श शरीर को निश्चेष्ट बना देता है। सर्वत्र फैला अंधकार मेरे अपक्व, गुलाबी-कोमल शरीर पीने को तत्पर प्रतीत है। यह अंधकार कृष्ण प्रतीत है। अब तो मेरा प्रत्यंग अपना प्रतीत नहीं है। वे मेरे अनुशासन में नहीं हैं। जैसे एक घूँट नीचे जाता है, उसीप्रकार अंग सब अन्धकार में उतरते हैं। अकारण भय मुझे दूर ले गया है शायद अतिवेग लौट आने देने केलिए हो सकता है। मेरी कॉपती उँगलियाँ सारे बन्धन ढीला करती है। मैं विवश हूँ। संयमित नष्ट हुई। कामक्रीडा को मैं तैयार हुं। निरुपाय, मूक्त ,संगम वह चाहती है।

मेरा अधर कॉपता है। शरीर के विचित्र कंपन से गला सूखता है। पलकें आधी बन्ध है। विचित्र अनुभव होता है। शरीर निर्जीव प्रतीत है। गाठालिंगन में तुम्हें मैं कसती हुँ। तुम्हारा प्राण-सॉस खीच लेना चाहती हैँ। ताकि निश्चेत मेरे

शरीर सचेत हो। मैं भावावेश में निर्मम हो गई हूँ। मेरा हाथ नागपाश बन तुम्हें जकडता है। फलतः मेरे दाँत का श्याम निशाना तुम्हारे कंधे, हाथ और अधरों में दर्शाया जाता है। ये निशाने लहरों से प्रताडित प्रवाल द्वीप-सा प्रतीत हैं। कृष्ण भी संयोग को तत्पर हो जाता है।

बाहर के महासमुद्र को अब वह देखना नहीं चाहती है घनांधकार में माला बन प्रकाशित ग्रह राधा ही वह मानती है। ब्रह्माण्ड की दिशा और समय का प्रवाह सब वह भूलना चाहती है, अपने को भी। कई दृष्टियाँ राघा की ओर केंद्रित है। वायू का झोंका उसे प्रहार प्रतीत है। इसलिए जरा भय है।

राधा कहती है - मैं अब दुविधा से मुक्त हुँ । शरीर भार मुक्त हो गया है। तुम्हारी प्रतीक्षा में सूक्षमता का अनुभव करती हुँ। आँखें चरम साक्षात्कार के लिए उतावली है। हाथ-आप तक पहुँचने की पगडंडियाँ है। मेरा कोमल, मायावी रंगवाली सीपी की तरह का शरीर नदारक है। मैं मात्र तुम्हारा पुकार रह गई हुँ। उद्दाम क्रीडासक्त राधा कहती है पर्दा बन्द कर दो। ताकि संसार की लहरें उससे टकराकर लौट जाएंगी।

दिशा को चुप होने को कहती है कि इस क्रीडा में कोई बाधा न हो। अचूक धनुर्धर से उम्मीद है कि अपना धनुष तरकस में रख दे। जबतक हमारा संयोग होकर मैं बेसुध हो जाऊँगी तबतक इसमें कोई दखलंदाजी न हो जाय। अथवा संयोग वेला में समय को वह स्थगित करनी चाहती है।

कृष्ण से प्रेम होते वक्त राधा अधीर थी। अब कृष्ण को वह अधीर मानती है। अब सारी सृष्टि बिलीन हो गई है। दिशा गायब है, समय बालों में बंधा है। सृष्टि के उसीम विस्तार में राधा, मात्र राधा कृष्ण के साथ देती अनुभूत है।

विप्रलब्धा

कृष्ण राधा को छोड़ महाभारत युद्ध की भूमि में व्यापरित - व्याप्त हो गया है। राधा शेष, अकेली हो गई है। इस पार्थक्य विरह की नायिकोन्मुख स्वानुभूति इसमें प्रकट है। राधा कहती है - मेरा तन राख, टूटे गीत, डूबे चाँद, खाली पात्र, गयाबीता धन्य मुहूर्त बराबर तेजहीन व्यर्थ प्रतीत हैं। तुम्हारे आलिंगन में जादू, वेग, प्रकाश था। मेरा शरीर मुर्झया फूल, बीते हुए उत्सर्व के सुनसान प्रदेश प्रतीत है । उजडे अंत:पूर के खण्डहरों के बीच उपेक्षित माणिजटित दर्पण बराबर प्रतीत है। रात में बाहुहीन प्यासा सर्प की गुंजलक

बराबर कनु का आलिंगन प्रतीत है। लेकिन वही सर्प आज विषला प्रतीत है। मात्र याद है। जैसे दर्पण के धुंधुले प्रतिबिंब हो। तुम्हारे बाहों में गर्व से समय को चुनैति देती थी। मेरे अलकों में समस्त गीत बाँध रखती थी। पूरे इतिहास से भी बडकर का क्षण था साक्षात्कार का। तुम्हारे हाथ में प्रकाश, मंत्र और जादू था। लेकिन अब मैं अकेली हुँ। मंत्र युक्त वाण तुम हो। वह छोड जाने के बाद कंपित प्रत्यंचा मैं हूँ। मैं अपने अतीत में जिन्दा हूँ। समय को बंधित मेरा अलक साँप बन मुझे काटता है। राख की चिनगारी, खाली पात्र में शेष बूंद, सब पाकर नष्ट होने की व्यथा की गूंज सा मैं शेष हुँ।

उसी आम के नीचे

विरह में संयोग-सुख की याद अति दुख देनेवाली है। राधा आम की छाया में कृष्ण के साथ जो सुख पाया था उसकी वह याद करती है। चरम साक्षात्कार के वक्त तुम्हारे वक्ष में मुख छुपाकर, पूर्ण समर्पित,
लज्जा के साथ मैंने जो बडबडाया था उसका कोई अर्थ नहीं? आम्रमंजरियों से मांग भर देते वक्त गर्व से मैने सोचा था कि

समस्त जगत को उस बेहोशी में लीन कर दी गई है। क्या वह स्वप्न था? उसी याद की पीड़ा से शरीर अब काँपता है। याद नहीं, फिर भी जिस आम के तले रहकर मुरली से मुझे बुलाया था, वहाँ पर आकर मुझे शांति मिलती है।

कुछ भी याद नहीं। अब मेरी ऊँगली मेरे वश में नहीं है। वह अनजाने ही तेरा नाम मिट्टी में लिखती है, जो साक्षात्कार के चरम मुहूर्त में मैने बडबडाया था। होश में आते ही उसे मिटाता है। अथवा बेहोश में लिखने वाला, होश में मिटाने वाला यंत्र वह अपने को मानती है।

तीसरे पहर इसी आम के तले धीमी हवा, शाखाओं, मेरे कपोलों, अलकों को सहलाती हुई बहती है। तब आँख मूँद जाती हुँ। तब याद करती हूँ - वर्षों पहले वर्षा में भीग आए बालकृष्ण को आँचल में ओट कर ले आयी थी। वहीं कृष्ण आज महान इतिहासपुरुष बन गया है। क्या इस बडावा में मेरा कुछ टूटन नहीं है? यहाँ सब पहले के जैसे है। शाम को मैं निस्सहाय लौट जाती हुँ । एक फरक है अब मेरी माँग सुनी है, चरण अस्थाई, जिस्म असमर्पित है। उस समय तुम्हारे वक्ष में बेहोश में मैने जो सुना था, क्या उसका कोई अर्थ नहीं है।

सेतुः मैं

इन पंक्तियों में राधा-कृष्ण से सवाल पूछती है। राधा का अपने अचेतन मन से संवाद हो रहा है। वह कहती है कि गोकुल से मथुरा जिसे इतिहास रचना था वह चला गया। कृष्ण को शिखर पर जाना था। उसे इतिहास रचना था। तुमने मुझे अपने लक्ष्य तक का माध्यम बनाया। मेरी बाँहों से, मेरी प्रेम की दुनिया से इतिहास तुम्हें ले गया। राधा अपने मन में बसे कृष्ण से जैसे सवाल कर रही है कि कनु, मैं क्या सिर्फ एक सेतु थी।

गोकुल इस लीलाभूमि और कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि, इस बीच के फासले तक पहुँचानेवाला सेतु थी? मानव रूप से ईश्वरीय रूप तक पहूँचने केलिए तुमने मुझे साधन बनाया। मेरा यह सोने की गूँथी, तारोंवाला यह शरीर अब मुझे निरर्थक लग रहा है। तुम्हारेलिये मैं एक साध्य नहीं तो साधन थी। यह जानकर अब मेरा यह पुल बना शरीर निर्जीव लग रहा है। इस काँपते शरीर को छोड़कर तुम अपना इतिहास रचने, युगपुरुष बनने चले गये। राधा की व्यथा इससे प्रतीत होती है।

अमंगल छाया

घाट से आते हुए

.....

.....

पथ से हट जा बावरी

इस सर्ग में राधा के दो रूप नज़र आते हैं- राधा के अवचेतन मन में बैठी राधा और चेतनावस्था में राधा और कृष्ण। यहाँ अवचेतन मन में बैठी राधा चेतनावस्था में स्थित राधा को संबोधित करती है।

वह पूछती है कि जब तू नदी से पानी भरकर घर जाते समय कदंम्ब वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न कनु को देवता समझ प्रणाम कर जाती थी। आज उस राह से मत जाना। उस राह से कृष्ण की अठारह अक्षौहिणी सेना जा रही है। अपने मन को जो कृष्ण प्रेम के कारण व्यथित हुआ है उसे लताकुंज की ओट में छिपा ले। कृष्ण तुम्हें जानते है, तुम्हारे रोम-रोम से परिचित है किन्तु उनकी यह उन्मत सेना तुम्हें नहीं जानती। इसलिए हट जा।

यह आम्रवृक्ष की डाल

.....

.....

तो क्या सारा ग्राम नहीं उजाड़ दिया जायेगा?

यहाँ राधा का अवचेतन मन उसे कह रहा है- आमवृक्ष की छाव में कई बार तुम्हारी राह देखते हुए बाँसुरी बजाकर कान्हा तुम्हें पुकारा करते थे। वह डाल जो कभी कान्हा को बहुत प्रिय थी उसे आज उसके सैनिक अपने सेनापतियों के रथ केलिए काट डालेंगे। वह छायादार अशोक वृक्ष भी काट दिया जाएगा और सेना केलिए रास्ता बनाया जाएगा। ग्रामवासी सेना केलिए तोरण नहीं सजायेंगे तो गाँव उजाड़ दिया जाएगा।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि युद्ध के विनाश को बताते है। राधा के मन में यह सवाल है-जो गोपाल कृष्ण थे, जो वृक्ष की छाँव में दिन गुजरने वाले कान्हा, गाँव की रक्षा केलिए गोवर्धन पर्वत उठानेवाले कान्हा, जो प्रकृति से प्रेम करनेवाले कृष्ण इतने कैसे बदल गये? उनकी सेना उसी प्रकृति को जिससे कृष्ण प्रेम करते थे उसे बेहिचक तहस नहस करती जा रही है। यह विनाश की अमंगल छाया, यह

युद्ध की अमंगल छाया है। क्या यह युद्ध इतना ज़रूरी है। ऐसे कृष्ण को राधा जानती नहीं थी।

दुःख क्यों करती है पगली

.....

.....

अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ हों?

राधा का अचेतन मन उसे कहता है कि कनु का आज जो वर्तमान है वहाँ उसके अपने दूसरे लोग है, जो तुम्हारे प्रेम के उन तन्मय क्षणों से अंजान है। कृष्ण तुम्हारे साथ बिताये क्षणों को भूल चुके है। इस समय कृष्ण को अपना वर्तमान अर्थात महाभारत का युद्ध ही याद है। इस हडबडाहट में अगर कृष्ण तुम्हें भूल गये है तो भी तुम्हें उदास नहीं होना चाहिए।

तुम्हें तो गर्व होना चाहिए, किसके महान प्रेमी के पास अठारह अक्षौहिणी सेना है? वह ओ तुम हो जिसके प्रेमी की अठारह अक्षौहिणी सेना है।

एक प्रश्न

अच्छा, मेरे महान कनु,

.....

.....

जिस का कुछ अर्थ मुझे समझ नहीं आता है!

राधा कृष्ण से इस सर्ग में एक प्रश्न करती है।

राधा अपने प्रिय कनु को महान कहते हुए पूछती है- मान लिया कि तुम्हारे प्रति मेरे जो तन्मयता के क्षण थे वे सिर्फ मेरी भावनाओं का आवेग था, मेरी सुकोमल कल्पनाएँ थी, मेरे वे सारे शब्द अर्थहीन थे। मैं एक क्षण भर यह भी मान लूँ कि मेरा प्रेम अर्थहीन था और महाभारत का युद्ध, जो धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, न्याय-दंड के बीच का युद्ध था, वह सत्य था। तुम उसके महानायक थे और मेरा प्रेम सिर्फ भावावेग था। तो भी मैं क्या करूँ कनु? मुझे तो उतना ही ज्ञान मिला जितना तुमने दिया है। तुमने तो मुझे सिर्फ प्रेम

सिखाया था। आज आस-पास सिर्फ विनाश नजर आता है। तुमसे सीखे प्रेम और सख्य भाव को समेटकर भी तुम जो इतिहास रचने गये हो, जो तुम्हारे आस-पास हो रहा है उसे समझने में, मैं असमर्थ हूँ।

अपनी जमुना में

.....

.....

जैसे बुलाते थे भटकती हुई गायों को

जिस यमुना नदी के किनारे घंटों तुम्हारा इन्तजार करती बैठी अपने को निहारती हुई, वहाँ अब शस्त्रों से लदी सेनाएँ पता नहीं कहाँ जाती है? उस यमुना के निर्मल जल में जब अपने को निहारा करती थी, उसी जल में अब रथों के टूटे अवशेष नजर आते है। यमुना की धारा में बहती हुई पताकें किसकी है?

कनु से राधा प्रश्न पूछती है कि, जिस महाभारत के युद्ध का कर्णधार तू स्वयं को समझते हो उस कुरुक्षेत्र में जहाँ अमानवीय, अकल्पनीय घटनाएँ घटी, एक पक्ष की जीत,

दूसरे पक्ष के हार, गगनभेदी युद्धघोष, क्रंदन स्वर और उस जगह से पलायन कर आये सैनिक जो अमानुष घटनाएँ बताते है। क्या यह सार्थक है कनु? यह प्रश्न राधा करती है।

राधा ये भी पूछती है कि उत्तर दिशा की ओर जो गिद्ध जा रहे हैं उन्हें तुमने बुलाया है? जैसे तुम अपनी गायों को बुलाया करते थे। अब तुम गिद्ध को बुला रहे हो, यह विनाश क्यों?

राधा जिसने कृष्ण का प्रेम ही पाया था, उसका कान्हा जो यमुना किनारे बाँसुरी बजाया करता था। कृष्ण के इस रूप से वह अपरिचित थी।

जितनी समझ तुम से अब तक पायी है कनु,

.....

.....

कैसे समझाओगे कनु?

राधा कनु से कहती है कि तुम्हारे साथ बिताये क्षणों को समेटकर तुम्हें जितना समझने की कोशिश की फिर भी ऐसा लग रहा है कि उतना काफी नहीं है। ऐसा बहुत कुछ बाकी है जिसका अर्थ मैं नहीं समझ पायी हूँ। कुरुक्षेत्र के मैदान में

शस्त्र छोड़कर विलाप करनेवाले अर्जुन को तुमने युद्ध का प्रयोजन समझाया, वैसे मुझे भी इस युद्ध की सार्थकता समझाओ।

(मुझे तो यह युद्ध निरर्थक लग रहा है) मेरे सारे तन्मयता के क्षण अगर निरर्थक थे तो क्या तुम समझते हो कि युद्ध के क्षण सार्थक है?

शब्द: अर्थहीन

शब्द ,शब्द, शब्द.....

.....

.....

और तुम मुझे समझा रहे हो ....

इस सर्ग में राधा का चेतन मन अवचेतन मन को संबोधित कर रहा था। राधा कहती है कि तुम जो शब्द कह रहे हो वे मेरे लिए अर्थहीन है। मेरे पास बैठकर जो प्रेमभरे शब्द मेरे रूखे बालों में उँगलियाँ उलझाए तुम कहते थे वे शब्द मुझे याद है। कई बार तुम्हें दायित्व, कर्म, स्वधर्म जैसे

शब्दों को बोलते हुए सुना है। इन शब्दों में अर्जुन ने क्या पाया वह मैं समझ नहीं पायी। मैंने समझने को कोशिश की पर नहीं समझ पायी। वह शब्द मुझे निरर्थक लग रहे है। मैं राह में रुककर उन अधरों के बारे में सोचती हूँ, जिन्होंने यह शब्द कहे होंगे। राधा के मन में मोह उत्पन्न हुआ ही अर्जुन न की जगह वह होती और कृष्ण उन्हें समझ रहे होते। अर्जुन को कृष्ण को सुनाने मिला, कृष्ण के द्वारा उसे समझाना राधा के मन में मोह उत्पन्न करता है। राधा का चेतन मन उसके अचेतन मन को यह कह रहा कि यह युद्ध कौन सा है, वह किसके पक्ष में है यह मुझे निरर्थक लगता है। मुझे तो सिर्फ कृष्ण का समझाना अच्छा लगता है। वह कल्पना करती है कि अर्जुन की जगह में होती और कृष्ण मुझे समझ रहे होते।

यहाँ राधा के मन में कृष्ण उसके भावजगत में मिलते है। अर्जुन के साथ ज्ञान जगत में हम कृष्ण को पाते है। राधा कल्पना करती है कि अर्जुन की जगह मैं हूँ।

कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व,

.....

.....

इतिहास कैसे समझाओगे कनु?

राधा कहती है, कनु तुम जो कर्म, धर्म, निर्णय, दायित्व इन शब्दों का प्रयोग करते हो, वे मेरेलिए निरर्थक है क्योंकि यह मेरे तन्मयता के गहरे क्षणों के शब्द नहीं है। मैं तुम्हें अपने तन्मयता के क्षणों में देखती हूँ। ऐसा लगता है कि तुम सिर्फ मेरा नाम लिए जा रहे हो। तुम्हारे जादू भरे होठों से जैसे रजनीगंधा के फूल झर रहे हो। तुम जो शब्द बोलते हो- कर्म, धर्म वे सब मुझ तक आते-आते बदल जाते है और मुझे सिर्फ रोधन ही सुनाई देता है।

राधा कनु से कहती है कि तुम्हारी ज्ञान की बातें मुझ तक आते-आते प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। तुमने मुझे तो सिर्फ प्रेम ही दिया है। इसलिए मुझे तो तुम्हारे हर शब्द में 'मैं' ही सुनाई देती हूँ। तुम मुझे इन शब्दों से इतिहास कैसे समझाओगे?

राधा का मानना है कि कृष्ण का भावजगत सिर्फ मैं हूँ। वह अपने भावजगत के कृष्ण को ही समझती है, अर्जुन के ज्ञानजगत के कृष्ण को राधा नहीं समझ पाती।

समुद्र स्वप्न

महाभारत के बाद कृष्ण खिन्न है। असफल इतिहास को वह छोड़ देता है। कनुप्रिया की याद करने लगता है। राधा कहती है- क्षीरसागर के शेषनाग की शय्या पर तुम्हारे साथ मैंने क्रीडा की है। राधा उस समुद्र को अपने में देखती है। जहाँ नील परिधान रुपी लहरों में छिप कर गुलाबी सूरज चमकता था। वहाँ अनगिनित निष्फल जीव छटपटाते हैं। तुम तब भी चुप हो। असंख्य लहर झाग रुपी शिरस्त्राण पहन कर मृत मछली को धनुष बनाकर युद्धरत प्रकट है। युद्ध से ऊबकर उदासीन होकर अंत में राहत हेतु मेरे कन्धों से टिककर बैठ गये हो। तब अनजाने ही तेरी उँगलियाँ गीली मिट्टी में कुछ लिखने लगी,ज़रा सुख की प्राप्ति हेतु।

उसी समुद्र में विषैली लहर है, निर्जीव सूर्य है, मृत प्राणी-मछली है। हाथ उठाकर तुम बोलने लगे। लेकिन कोई सुनता नहीं। हारा तुम अंत में समुद्र रुपी मेरे वक्ष में अच्छूते, ताजा वट पत्र- जो मैं हूँ- मैं विष्णु भगवान् बन शिशु होकर

सो रहे हो। तब तुम बडबडाते थे स्वधर्म। तब लहरें तुम्हें सुलाती थी।

गाढ़ा निद्रा में पूछते थे, न्यायालय आदि की कसौटी क्या है? तब लहरें तुम्हें सुलाती हैं। क्योंकि निद्रा समाधि के समान है। तनाव के कारण नींद खुल जाती है और पूछता है, सिरहाने या पैंताने है धर्म या अधर्म? निर्णय नहीं ले पाता है। यह सुनते ही लहरें गरजने लगीं। फिर तुम समुद्र तट पर उदास बैठे जाते हो, शून्य में ताकते हुए स्वयं कहने लगे यदि पैंताने, अर्जुन की जगह पर दुर्योधन होते तो? अपने को नादान बालक महसूस करता है।

कनुप्रिया के सपने के सागर-तट पर एक देवदारु है। वायु का मूक प्रहार भी है। इतिहास लंगडाते उस बालू पर पगचिन्ह बनाते प्रतीत है। इतिहास बनाने का कार्य निष्फल हुआ है। मंत्रचालित गांडीव निष्फल हो गया है।

समुद्र तट के नारियल के कुंज के पीपल के पेड़ के टेल तुम बैरागी हो बैठे हो। तेरी चिर जवानी पर थकावट प्रकट है। तुम अपने निष्फल इतिहास को पुराने कपडे बराबर उतार फेंक देते हो। उदास बैठे तुम वेदना से पके प्रतीत है। कांपती दीपशिखा बराबर पत्ते झरते हैं। अन्धकार व्याप्त है।

लहरें तुम्हारे शिथिल बाँहें हैं। सीपियाँ कांपते अधर प्रतीत है। अब तुम सिर्फ एक पुकार हो। अर्थशून्य शब्द के बिना मेरे लिए एक सार्थक पुकार। यहाँ बताया गया है कि योगमाया के अभाव में ब्रह्म का कर्म निरर्थक है। राधा के अभाव में इतिहास पुरुष बनाने का अथक परिश्रम कृष्ण को भी निरर्थक साबित है।

समापन

कनुप्रिया अपने प्रिय कनु की पुकार केलिए आतुर है। इतिहास पुरुष बनने हेतु, अवतार की पूर्ती हेतु, कर्तव्य में निरत कृष्ण राधा को छोड़कर अपने कर्मभूमि में सक्रिय रहा। अंततः लौकिकवादी राधा को यह सब निष्फल प्रतीत हुआ। कृष्ण की प्रतीक्षा में राधा कहती है- है कान्हा, स्वप्न सागर के तट पर आपको मैं ने उदास-चुप पाया था। आपकी एक पुकार पर मैं आपकी ओर दौड़ आना चाहती हूँ। तुम्हारा गढ़ालिंगन में बद्ध होना चाहती हूँ। इसलिए मैं तुम में विलीन नहीं हूँ। राधा तो शाश्वत मुक्ति नहीं बल्कि सामायिक मिलन चाहती हैं। आगे राधा कहती है कि हमारे पथ के विशेष मोड़ पर मैं तुम्हें निराश पाती हूँ। युद्ध में मेरा सामीप्य नहीं हुआ

इसलिए पराजित महसूस है। महामिलन के अवसर पर तुम ने मुझे गूंथा था। लेकिन इतिहास में तुम ने अपने प्रिय सखि को अलग रखने लगा। मेरे बिना तुम्हारा इतिहास अधूरा है; निरर्थक है। सामयिकता से जुडा हुआ कौरव-पांडव युद्ध, खूनी कार्यकलाप था।

मैं तुम्हारे पास ही हूँ। अब इस उदास वेला में, पराजित समय में तुम्हें मेरी ज़रुरत है। लो, मैं आ गयी हूँ। तुहारे जिस्म में मुग्ध में आ गयी हूँ। इतिहास निर्माण में मुझे भी जोड़ दो। ताकि इतिहास सार्थक होगा। मैं जीवन के वही कठिनतम मोड़ में खड़ी हूँ। मुझे अपनाओ।

सहायक ग्रन्थ

पद्य विहार

कनुप्रिया

Model Question Paper

Third semester BA/B.Sc Degree Examination

Common Additional Language Course in Hindi

HIN 3A 09

POETRY IN HINDI

Time: 2.5hrs Max.Marks:80

Part A

I.निम्न लिखित प्रश्नों में से किन्हीं प्रश्नों के उत्तर लिखिए/ प्रत्येक प्रश्न का अंक 2 है/ आपको अधिकतम 25 अंक मिल सकते हैं/ 25 marks

1. यशोधरा की शिकायत क्या है?
2. गुरुमहिमा अभिव्यक्त करनेवाला कबीर का एक दोहा/
3. सूर की सख्य भक्ति कैसी है?

4. तुलसी की रामभक्ति कैसी है?
5. निराला किसको जागृत होने का आह्वान कर रहा है और क्यों?
6. 'मैंने कहा पेड़' का मुख्य सन्देश क्या है?
7. नागार्जुन के अनुसार हम किसके साझीदार है?
8. बीज की व्यथा क्या है?
9. अनामिका 'बेजगह' कविता में किसके बारे में बताना चाहती है?
10. 'मेरे अधिकार कहाँ है' कविता में कवि का व्यंग्य क्या है?
11. 'पुतली में संसार' कविता में समाज की किस समस्या की ओर इशारा है?
12. कनुप्रिया कौन है?
13. कनुप्रिया में किसकी अनुभूतियों का वर्णन किया है?
14. कनुप्रिया का अधूरापन कैसे चित्रित की गयी है?
15. यशोधरा की दृष्टी में गौतम बुद्ध का अपराध क्या है?

Part B

II. निम्न लिखित प्रश्नों में से किन्हीं प्रश्नों का उत्तर लिखिए/ प्रत्येक प्रश्न का अंक 5 है/ आपको अधिकतम 35 अंक मिल सकते हैं/ **35 Marks**

16.बेजगह का प्रतिपाद्य/

17.कनुप्रिया का विरह/

18.'बीज की व्यथा' कविता का सन्देश/

19.तुलसी का राम और कबीर का राम/

20.सूर का वात्सल्य वर्णन/

21.कनुप्रिया में राधा का व्यक्तित्व/

22.'पुतली में संसार' कविता की समकालीनता/

23. निराला की काव्य कला/

Part C

III.निम्न लिखित प्रश्नों में से किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर लिखिए/ प्रत्येक प्रश्न का अंक 10 है/ **20 marks**

24. कनुप्रिया की कहानी/

25. 'मैंने कहा पेड़ में अभिव्यक्त पारिस्थितिक चेतना

26. राधा की चेतना, कृष्ण का अधूरापन: कनुप्रिया के आधार पर इस पर चर्चा कीजिए/

27. 'जागो फिर एक बार' कविता का प्रतिपाद्य/